S/79

भारतीय मजदूर संघ प्रकाशन

# औद्योगिक महासंघ

भारतीय मजदूर संघ
S/79
केन्द्रीय कार्यालय नई दिल्ली

(केवल सदस्योंके लिये)

—दत्तोपंत ठेंगडी

S/79

# निवेदन

भारतीय मजदूर संघके तत्त्वावधान मे स्थापन हुये अखिल भारतीय औद्योगिक महासंघों तथा भा. म. संघसे प्रेरित नॅशनल ऑर्गनायझेशन ऑफ बँक वर्कर्स तथा सरकारी कर्मचारी राष्ट्रीय मंच (Government Employees National Forum) के प्रथम संमेलनोंमे मा. श्री. दत्तोपंत ठेंगडीजी के दिये भाषणोंपर आधारित यह लेख संग्रह प्रकाशित करते हुये हमे हर्ष होता है। अन्य कुछ महासंघोंके उद्घाटन के भाषण उपलब्ध न होने से हम वे प्रकाशित करने मे असमर्थ है। तथापि वस्त्र तथा परिवहन उद्योगों (Motor Transport) के विषय मे श्री. ठेंगडीजी के लिखे हुये दो महत्त्वपूर्ण लेख इसी पुस्तक मे अंग्रेजी भाषामे प्रस्तुत किये है। किन्तु समयाभाव में उन्हे अनुवादित करना असंभव था। त्रुटियों के लिये पाठक हमें क्षमा करें।

—प्रकाशक

# अ नु क्र म णि का

| | | |
|---|---|---|
| | | पृष्ट क्रमांक |
| (१) | नॅशनल ऑर्गनायझेशन ऑफ बॅंक वर्कर्स | १–१५ |
| (२) | भारतीय शूगर मिल मजदूर संघ | १६–२५ |
| (३) | भारतीय रेल्वे कर्मचारी संघ | ३३–४० |
| (४) | भारतीय प्रतिरक्षा मजदूर संघ | ४१–४७ |
| (५) | सरकारी कर्मचारी राष्ट्रीय मंच | ४८–५० |
| (6) | Nationalist Central Govt. Employees' Forum | 51–53 |
| (7) | Our Road Transport | 54–64 |
| (8) | Textile Association | 65–81 |

# नॅशनल आर्गनायझेशन ऑफ बँक वर्कर्स.

नागपूर दि. ५, ६, ७ जनवरी १९६५

आप सबके द्वारा लिये गये बँक कर्मचारियों के एक राष्ट्रीय संगठन के निर्माण के पुनीत कार्य के लिये अपना बिना शर्त सहयोग देने मे मुझे अपार हर्ष हो रहा है। आज के युगमे जब राजनीति जीवन के सभी क्षेत्रों पर अपना अधिकार जमाने का प्रयास कर रही है, ऐसे समय आप सब विभिन्न राष्ट्रवादी राजनितिक विचारधारा वाले लोगों ने राष्ट्रवाद के सर्व-मान्य आधारपर एकत्र आने का एक अत्यन्त बुद्धिमत्ता पूर्ण व उत्साह-वर्द्धक निर्णय लिया है। प्रजातंत्रीय निर्णय ही आपको नीतिका अन्तिम आधार है। बैंकिग उद्योग में विद्यमान यूनियनों को कम्यूनवाद के अमानवीय, राष्ट्रद्रोही, एवं वर्गवादी कार्य पद्धति से मुक्ति दिलाना आपका पुनीत कर्तव्य है। वास्तव में आप राष्ट्रीय पुनर्जागरण और रचनात्मक ट्रेड यूनियनवाद के आन्दोलन के मूल स्त्रोत है।

## देशभक्त संगठन का उदय

मेरी समझ में इस प्रकार के पुनीत कार्य के लिये अपने को बिना शर्त समर्पण कर देने से बढ़कर अन्य कोई पुनीत कार्य नही हो सकता। क्योंकि नाम और संस्थाओं का कोई उपयोग नहीं जब तक कि वे राष्ट्र को सर्वोपरि न समझे। अतः इस संस्था के राष्ट्रवादी, राजनितिरहित तथा प्रजातन्त्रीय दृष्टिकोण को देखकर समस्त राष्ट्रवादियों को शतप्रति-शत प्रसन्नता होगी। आपने अपने विधान में यह धारा–कि आप अपने को किसी भी केन्द्रीय श्रमसंगठन से सम्बद्ध नही करेंगे या आप कोई राजनीतिक फन्ड नही एकत्र करेंगे जोड़ करके एक सुन्दर निर्णय लिया है। मुझे विश्वास है कि सभी देश भक्त केन्द्रीय श्रमसंगठन जैसे इन्टक, हिन्द मजदूर सभा, भारतीय मजदूर संघ, यूटुक आदि भी इस निर्णय का स्वागत करेंगे। आपके संगठन का निर्माण राष्ट्रवादियो के

मस्तिष्क के उत्तम निश्चय का ज्वलंत प्रमाण है। इसके अतिरिक्त आपको अनेक सार्वजनिक नेताओं–जो कि जीवन के विभिन्न क्षेत्रो में ख्याती प्राप्त कर चुके है, के जो संदेश मिले है, उनसे राष्ट्रवादी भारत की भावना का पता चलता है।

मुझे विश्वास है कि आगे आनेवाले समय में सब प्रकार कि हिचक और उदासीनता समाप्त हो जावेगी और हमारे देश के हृदयपटल पर एक अत्यन्त देशभक्त श्रमसंगठन का उदय होगा।

## कम्यूनवाद बनाम राष्ट्रवाद

निकट भविष्य मे आपके सामने काफी ऊंची चढ़ाई का काम आ रहा है। उस समय जबकि सभी देशभक्त तत्व आजादी की लडाई में तथा औद्योगिक पुर्ननिर्माण में लगे थे, देशद्रोही तत्व श्रम के क्षेत्र में अपने किले बनाने में लगे थे। परिणाम यह हुआ कि वे कुछ अर्थों में इस क्षेत्र में अपने पैर जमा चुके है। आपके नये संगठन की अपेक्षा उन्हे कुछ तांत्रिक सुविधाये भी प्राप्त हैं। इस भूमीका में यह हो सकता हैं कि आपकी प्रगति प्रारम्भ मे धीमी मालूम पडे। मैं समझता हूं की यह बुराई नही बल्कि अच्छाई है। इतिहास आपको सम्मान का स्थान देगा, यदि आपने देशभक्ति के लिये कम्युनिजम से एवं शैतानी ताकतों से द्वंद्व प्रतिद्वंद्व टक्कर ली। और आप यह पूरी तरह जान लिजिए कि आपकी प्रत्येक विजय चाहे वह कितनी ही कम महत्व की क्यों न हो, वास्तव मे विश्व कम्युनिज्म के लिए ठेस पहुंचाने वाली है। सचमुच आप दुश्मन की मांद मे घुसकर लड रहे है।

कम्युनिष्ट आन्दोलन का राष्ट्रद्रोही स्वभाव आज सिद्ध हो चुका है, इसमे कोई सन्देह नही रह गया है। कम्युनिज्म का सिद्धान्त ही राष्ट्रद्रोही है। इसके अनुसार देशभक्ति "बुर्जुआ" (पूंजीवादी) धारणा है। राष्ट्रवाद के प्रति इस प्रकार का दृष्टिकोण मार्क्सवाद व लेनिनवाद के लिये घातक रहा है।

अभी हाल की घटनाओं ने इस सत्य को और भी पुष्ट किया हैं। जो चीज समय की कसौटी पर खरी उतरी है, उसकी अवहेलना करना निश्चित ही मानसिक गुलामी है।

आलइण्डिया बैंक इम्लाइज एसोसियेशन विश्व कम्यूनवाद के आन्दोलन के द्वारा नियंत्रित तथा उसके ही हित के लिए है–यह सत्य है। यह बात भी निष्पक्ष व्यक्तियों को स्पष्ट रहनी चाहिये।

## ए. आई. बी .ई. ए. की सदस्यता केवल विकल्प का अभाव

यह सच है कि एक ठोस व प्रभावशाली विकल्प के अभाव में काफी बैंक कर्मचारी अपने स्वार्थो की रक्षा के भावसे इस बातको घोषित करना उचित नही समझते कि उनकी यूनियन जो दिखावटी तौर पर उनकी रक्षा के लिये काम करती है– का नियन्त्रण गद्दारों (देश द्रोहियो) के हाथ मे है। एक बीमार व्यक्ति को अपने शरीर को उस बस्ती मे स्थित एकमात्र डॉक्टर को मजबूरन सौप देना पडता है, इस बातको परवाह किए बिना–कि उसकी नियत क्या है, उसकी फीस कितनी ज्यादा है। लेकिन इसमे कोई तर्क नही है कि कर्मचारियों की रक्षा के लिये केवल एकही प्रतिनिधी (संगठन) होना चाहिए। एन. ओ. बी. डब्ल्यू. बैंक कर्मचारियो के सम्मुख इस अति आवश्यक विकल्प के रुपमे खडा हुआ है। मुझे विश्वास है कि आपका प्रयत्न सेवा और प्रेम की भावना से ओतप्रोत है इसलिये आप रोग ग्रस्त कर्मचारियों के लिये कम्यूनवादी पार्टी के धोखेबाज कार्यकर्ताओं की अपेक्षा ज्यादा उपयुक्त सलाहकार सिद्ध होंगे।

## कम्यूनवाद राष्ट्रद्रोही ही नही अपितु मजदूर द्रोही भी

यद्यपि आदतों को खत्म होने में कुछ समय लग सकता है किन्तु धैर्य और सातत्य से जिनका आपके पास पर्याप्त भंडार है आप निश्चित ही अन्धकार की शक्तियों पर विजय प्राप्त करेंगे, क्योंकि कम्यूनवादी

आपके स्वभाव व नियत से न केवल राष्ट्रद्रोही अपितु मजदूर हितों के भी दुश्मन है। उनका निहित स्वार्थ कर्मचारियो को अज्ञानी और आधा पेट रखने में है। पार्टी के कार्यकर्ता उन कर्मचारियों में एक अन्धी क्रांति के लिये तबतक के लिये एक प्रकार का इंधन तैयार करते है जब तक कि वे कर्मचारी रोटी के एक टुकडे के लिये कम्यूनवादी पार्टी पर आश्रित नही बन जाते। इस लिये जब कभी भी किसी गैर कम्यूनवादी संगठन के द्वारा कर्मचारियो के भाग्य मे सुधार लाने की कोई कोशिश की जाती है तो कम्यूनवादीयो को यह बात नागवार लगती है और वे नाराज होकर उसे मैदान से बाहर खदेड़ने की कोशिश करते है।

ए. आई बी. ई. ए. का इतिहास इस प्रकार के कर्मचारी विरोधी इरादो से भरा पड़ा है, जो कि कम्यूनवादियो की रण नीति की विशेषता है। यह अनुभव करके कि कर्मचारियो मे अपनी जीवन दशा सुधारने के लिये बडी जागरूकता है–और यह कि बैंकों की आर्थिक स्थिति में सुधार के कारण इस भावना की पूर्ति होना भी संभव है, ए० आई० बी० ई० ए० के कम्यूनवादी सदस्यों ने इस बात का प्रयत्न किया है कि श्रमिको को इसका कम से कम लाभ मिले। बोनस संबन्धी अनेक झगडो में इन कम्युनवादियो ने सभी जगह पर पूंजीपति बैंक मालिक से सांठ गांठ करके कम से कम राशि पर सौदा किया है। युनियन हाथ में बनी रह सके इस उद्देश्य से उन्होने समझौता वार्ताओ को काफी देर तक लटकाये रहने का तरीका अपनाया, जिससे कि समय का प्रभाव कर्मचारियों की जीवनी शक्ति पर पडे और वे मानसिक व शारीरिक दोनों ही से हार करके कुछ तो भी मानने के लिये मजबूर हो जाय, बिना यह जांच किये हुए कि वह "कुछ" उनके पूरे प्राप्तव्य के अनुकूल है या नहीं। यही कारण है कि अनक ऐसे मसल में, जो कि औद्योगिक न्यायाधिकरण (Tribunals) और अदालतों के सामने थे, कम्यूनवादी यूनियनों ने आंकडो और आर्थिक अंकों के आधार पर, मामलों की योग्यता पर बहस करने से इकार कर दिया।

नेशनल ट्रिब्यूनलस (बैंक डिस्प्यूट्स) के सामने, ए० आई० बी०-ई० ए० ने यही नीति अपनाई है। अभी हाल के देसाई एवार्ड में भी तमाम ऐसे प्रमाण मौजूद है जो कि यह सिद्ध करते है कि ए० आई०-बी० ई० ए० ने माननीय न्यायाधीश श्री के० टी० देसाई द्वारा कर्म-चारियों को मिलने वाला उचित न्याय असम्भव कर दिया। मै अपनी बात स्पष्ट करने के लिए उक्त एवार्ड के कुछ उद्धरण आपके सम्मुख पढ़ूंगा।

## देसाई एवार्ड के उद्धरण

जीवन निर्देशांक में हुयी वृद्धि के आधार पर कर्मचारियों के लिए अधिक वेतन सम्बन्धी मामले को प्रस्तुत करने के बाद सम्बधित पक्षों में यह मतैक्य हो गया था कि जिस एक बात के आधार पर बैंकिंग उद्योग में वेतन सम्बधी विवाद तय होता था वह सर्व साधारण श्रमिकों तथा विशेषतः बैंक कर्मचारियों के उपभोक्ता सामग्री के मूल्य तथा उन कर्मचारियों की उपभोग पद्धति के इर्दगिर्द स्थिति थी। ए० आई० बी०-ई० ए० ने अपना संपूर्ण विवाद इसी आधार पर खड़ा किया था। अतः यह आशा करना स्वाभाविक था कि ए० आई० बी० ई० ए० के प्रति-निधि पर्याप्त आंकडों तथा प्रमाणों के द्वारा अपनी मांग को पुष्ट करने के लिए आगे आते परन्तु इस मसले पर हुये सम्पुर्ण वादविवाद बहस से एक अलग से हो चित्र प्रकट होता है। यहां तक कि प्रारम्भिक सुन-वाइयों में जब कि बैंकों के श्रेणी तथा अदालती मामलों के लिये क्षेत्र विभाजन के सम्बन्ध में बहस हो रही थी माननीय न्यायाधीश महोदय एवार्ड के अनुच्छेद ४-१६७ (पृष्ठ ५३) में कहते है:--

ऐसे बैंकों की, जिनका प्रभावशाली प्रतिनिधीत्व मेरे सामने हो रहा है-में लगलग १२०० शाखायें हैं। मेरे सामने इस स्थानों के सम्बन्ध में कोई भी विश्वसनीय आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं जिनके द्वारा इन स्थानों के जीवन यापक मूल्य, जीवन स्तर तथा उपभोग पद्धति के आधार पर

इनके श्रेणी विभाजन में मुझे सहायता मिली होती। वास्तव में मैंने सम्बन्धित पार्टियों से अनेक बार उक्त प्रकार की सामग्री प्रस्तुत करने के लिये इच्छा व्यक्त की किन्तु कोई भी मान्य सामग्री प्राप्त नहीं हो सकी। अगर इस प्रकार की सामग्री उपलब्ध हुई होती तो चीजों पर दूसरे ही ढंग से विचार होता अपेक्षाकृत वर्तमान स्थिति के जिसे हम कभी 'एक निर्जीव सूत्र का अन्धा व्यवहार" की संज्ञा देते हैं।

मैं यह बात समझ सकता था कि ए० आई० बी० ई० ए० ऐसी कोई सामग्री नहीं प्रस्तुत कर सकती थी जिससे बैंक मालिकान का मतैक्य होता किन्तु मैं यह नहीं मान सकता हूं कि यूनियन, जो कि जीवन यापक आंकडों, जीवन स्तर तथा उपभोग पद्धति के आधार पर अपनी माग प्रस्तुत करने के बाद भी अपनी मांगो को पुष्ट करने के लिये कोई विश्वसनीय आंकडे नहीं प्रस्तुत करती और न्यायाधीश को 'एक निर्जीव सूत्र का अन्धा व्यवहार" की घोषणा करने की छूट दे देती हैं।

इसी प्रकार अनुच्छेद ५-१०१ (पृष्ठ ९७) में भी न्युनतम व अधिकतम वेतन क्रम के अनुपात के विषय में बहस करते हुए विद्वान न्यायाधीश महोदय इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि "क्लर्क तथा सबार्डिनेट स्टाफ के वेतन क्रमों के न्यूनतम व अधिकतम के बीच सुझाये गये सम्बन्ध में कोई वैज्ञानिक या तर्क संगत कारण नहीं दिया गया है।" कम्यूनवादियों की इस प्रकार की मनोवृत्ति के कारण बैंकिंग उद्योग के सिपाहियों (चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों) को बहुत बडी हानि पहुंची है।

परिणामतः नया वेतन क्रम देते समय विद्वान न्यायाधीश ने अनुच्छेद ५-१९३ पृष्ठ ११९ में बहुत ही महत्वपूर्ण टीका की है। मेरे सम्मुख पिछले ट्रिब्यूनल्स के निर्णयों की बडी जोरदार आलोचना की गई है कि वे (निर्णय) पर्याप्त आंकडों के अभाव में दिये गये हैं। यहा तक कि अपनाये गये सिद्धान्तों पर भी आपत्ति की गई है। मेरे सम्मुख जो भी विश्वसनीय समझे जाने वाले आंकडे हैं और जिन पर देश के विभिन्न

भागो में स्थित बैंक के कार्यालयों के क्लर्क तथा सबार्डनेट स्टाफ के कर्मचारियों के जीवन की विभिन्न अवस्थाओं की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में निर्णय आधारित किया जा सकता है वह अत्यल्प है यहां तक कि देश के विभिन्न भागों में जीवन की आवश्यक वस्तुओं जैसे भोजन, वस्त्र और मकान की कीमतों के सम्बध में भी मुश्किल से ही कोई विश्वसनीय प्रमाण है। जब वेतन क्रमों का गठन किसी आधार वर्ष (Base Year) से सम्बधित होना है तो कर्मचारियों की आवश्यकताओं को उक्त आधारवर्ष तथा दिये जाने वाले (नये) वेतन के प्रकार को ध्यान में रखकर विचार करना उचित होगा। इस प्रकार का वेतन क्रम निश्चित करने के बाद आधार वर्ष के स्तर में उपर होने वाले परिवर्तन (वृद्धि) के मुकाबले में महगाई भत्ता के भुगतान का एक सूत्र सामने लाना होगा। दुर्भाग्य से मेरे सामने ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिसके द्वारा मैं अपने द्वारा उल्लिखित आधार वर्ष के अनुरूप कर्मचारियों की, रुपयों की सकल में, आवश्यकताओं के आधार पर वेतन क्रमों की रचना कर सकता।" और अब आगे आने वाली राष्ट्रीय त्रिदलीयवार्ता में कम्यूनवादी राजनीतिक घोषणा व श्रमिक विरोधी नीति को कार्यान्वित करने में लगे हैं। यह बात उनके मांगपत्र को देखने से भी पता चल सकती है।

## उपभोक्ता मूल्य सूचकांक और ए० आई० बी० ई० ए०

ए० आइ० बी० ई० ए की एक मांग अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (श्रमिक वर्ग के लिए) की जांच करने तथा महगाई भत्ते में तदनुकूल सुधार लाने की है। यह सर्वविदित है कि अखिल भारतीय सुचकांक लगभग विगत ४० वर्षो से गलत आधार पर संग्रहीत किया जा रहा है और कम महंगाई भत्ते के रूप मे कर्मचारियों के साथ अन्याय करता रहा है। किन्तु कम्यूनवादियों ने जो कि इस श्रमिक क्षेत्र में पिछले ४० वर्षो से सक्रिय रहे हैं, कभी भी सूचकाकों के इस दोष

पूर्ण एवं श्रम विरोधी गठन की ओर उंगली नहीं उठायी। १८ वीं शताब्दी की दकियानूसी कम्युनवादी पार्टी की आंख तो तब खुली जब कि भारतीय मजदूर संघ की बम्बई शाखा ने १५ अप्रैल १९६३ से २० अगस्त १९६३ तक किये गये अपने निरन्तर आन्दोलन के द्वारा बम्बई की तथा कथित अत्यन्त वैज्ञानिक सूचकांक को बुरी तरह रद्द सिद्ध कर दिया।

किन्तु फिरभी ए० आइ० बी० ई० ए० के ये ओछे लोग जानबूझ कर बैंक कर्मचारियों के लिये श्रमिक वर्गीय सूचकांक (Working Class Index) की रट लगा रहे हैं जबकि इन बैंक कर्मचारियों के लिये वास्तव में मध्य वर्गीय सूचकांक (Middle Class Index) अधिक व्यवहार्य है। देसाई एवार्ड के अनुच्छेद ५-६५ (पृष्ठ ८८) के द्वारा बैंक कर्मचारीयों के लिये मध्यम वर्गीय मूल्य सूचकांक के अनुकूल लाभ एवं सुरक्षा की मांग करने के लिये अग्रिम तर्क प्रस्तुत किये गये हैं। उक्त अनुच्छेद के अनुसार 'जनता के किसी वैशिष्ट वर्ग के जीवन यापक मूल्यों में हुई वृद्धि को निश्चित करने के लिये उचित उपभोक्ता मूल्य सूचकांक का होना आवश्यक है वर्तमान अखिल भारतीय श्रमिक वर्गीय उपभोक्ता मूल्य सूचकांक का गठन केवल फैक्ट्रियों में काम करने वाले श्रमिकों की दृष्टी से बनाया जाता है। उसी प्रकार का ऐसा कोई अखिल भारतीय सूचकांक उस मध्यम वर्ग के लोगों के लिए नहीं है जिसकी श्रेणी से बैंकिंग उद्योग में लगे हुए क्लर्क स्टाफ मुख्यतया आते हैं।"

अन्तर्राष्ट्रीय सांख्यकी संगठनों की तांत्रिक समितियों (Technical Communities of International Statistical Bodies) ने बारम्बार कृषक वर्ग, कर्मचारी वर्ग, तथा मध्यम वर्गीय कर्मचारीयों के लिये (अलग २) कम से कम त्रिपक्षीय जीवन मूल्य सूचकांकों की आवश्यकता की वकालत की है। भारत सरकार के केन्द्रीय सांख्यकी संगठन (Central Statistical Organisation) ने अपने वृत्त १९५८-५९ के प्राक्कथन के अनुच्छेद ४ में कहा है—

"केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियो के वेतन निश्चित करने तथा ताक-मेल बिठाने के सिलसिले में अनेक बार– अखिल भारतीय मध्यम वर्गीय जीवन सूचकांक की आवश्यकता का अनुभव किया गया है। अतएव श्रम एवं नियोजन मन्त्रालय द्वारा जीवन मूल्य सूचकांकों के विषय पर स्थापित तांत्रिक सलाहकार समिति Technical Advisory Committee) १९५४ में यह अनुशंसा की कि पारिवारिक बजट की जांच की जाय जिसमें अन्य वर्गों के साथ ही शहरी मध्यम वर्गीय आबादी भी हो। १९५७ में समाचार पत्र कर्मचारियों के लिये गठित वेतन आयोग ने अपनी रिपोर्ट में इंगित करते हुए उल्लेख किया कि मध्यम वर्ग के कर्मचारीयों के लिए व्यवहार्य जीवन मूल्य सूचकांकों के अभाव में इस (आयोग) को अपने कार्य में बहुत सी रुकावटें आई और अनुशंसा की चूंकि मध्यम वर्गीय कर्मचारियो के वेतन से सम्बधित विवादों की संख्या में वृद्धि हो रही है, सरकार को चाहिये कि विश्वसनीय मध्यम-वर्गीय, जीवन मूल्य सूचकांकों के संग्रह तथा प्रकाशन हेतु आवश्यक कदम उठायें।'

## मध्यम वर्गीय सूचकांक व बैंक कर्मचारी

सच्ची बातें तर्कों से भी अधिक बुलन्द होती है। कम्युनवादी एक और तो बढ़ते हुये मूल्य स्तर के विरोध में चिल्लाते हैं किन्तु दूसरी ओर वे एक ऐसी योजना की वकालत करते हैं जिसके फलस्वरूप ही उपभोक्ता वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त वे जीवन मूल्य सूचकांक के दोष पूर्ण गठन के सम्बन्ध में चुप्पी साधकर उसके भागीदार बन जाते है जिसके ही आधार पर वेतन के ऊपर मूल्य वृद्धि के प्रभाव को निष्क्रिय करने का सारा तंत्र ही खड़ा हुआ है। ट्रिब्यनल्स के सामने अपने सभी तर्कों में ये कम्यूनवादी ऐसा कोई आंकड़ा प्रस्तुत नहीं करते जिससे कि कर्मचारियोंयों को न्याय मिल सके। जब श्रमिकों में उत्पन्न क्षोभ की ताकत के सामने उन्हे मूल्य सूचकांक के विषय को टालने में कठिनाई का अनुभव होता है उस समय वे मध्यम वर्गीय मूल्यसूचकांक के

स्थान पर श्रमिक वर्गीय मूल्य सूचकांक मांग कर चीजों को आपस में उलझा देते हैं। सांख्यिकी व्यवहार के सभी विद्यार्थियों को यह भली भांति पता है कि मध्यम वर्गीय जीवन मूल्य सूचकांक का व्यवहार बैंक कर्मचारियों के लिए अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य सूचकांक को शुद्ध करने के अतिरिक्त न केवल अधिक लाभदायक है अपितु इससे भी आगे वह अन्य की अपेक्षा शीघ्रता से किया जा सकता है। मध्यम वर्गीय जीवन मूल्य सूचकांक सम्बन्धी प्रमाण व आंकडे तैयार हैं और यह केवल एक महिने की बात है कि इस आंकडे को उपयोग में लाया जा सकता है। इसके विपरीत अखिल भारतीय श्रमिक वर्ग जीवन मूल्य सूचकांक को शुद्ध करना तब तक प्रशासकीय दृष्टि से असम्भव है जब तक की १९६८-६९ की जांच एक रूप से संपूर्ण राज्यों में पूर्ण नहीं हो जाती।

## मध्यम वर्गीय मूल्य सूचकांक और विशेषज्ञों की राय

अन्तर्राष्ट्रीय विशेषज्ञो की राय भी बैंक कर्मचारियों द्वारा मध्यम-वर्गीय मूल्य सूचकांक की मांग के पक्ष में है। जीवन यापक मूल्य के ऊपर विचार करने के किये नियुक्त भारत सकार की तांत्रिक सलाहकार समिति (Technical Advisory Committee) भी उन बैंक कर्मचारियों के पक्ष का समर्थन करती है। विभिन्न ट्रिब्यूनल्स जिसमें देसाई ट्रिब्यूनल भी सम्मिलित है-का कहना है कि मध्यम वर्गीय सूचकांक के आधार पर ही बैंक कर्मचारियों के साथ न्याय किया जा सकता है। देश के केन्द्रीय साख्यिकी संगठन ने इस प्रकार के न्याय दिये जाने की समर्थता प्रदान करने के लिए सम्पूर्ण आंकडों सहित अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की है परन्तु यह सब होते भी ए० आई० बी० ई० ए० के नियन्त्रक श्रमिक विरोधी कम्यूनवादियों ने इस प्रकार की मांग करने से इन्कार कर दिया है। यदि बैंक कर्मचारियो का संगठन ही मध्यम वर्ग की समस्याओं पर एक शब्द नहीं बोलता तो फिर उन मध्यम वर्ग के लोगों की मांगों को लेकर कौन चलेगा ?

# वर्ग संघर्ष और कर्मविहीन समाज की कल्पना ढकोसला मात्र

यह सम्भव है कि कुछ लोग वर्ग विहीन समाज के नाम पर मध्यम वर्गीय मूल्य सूचकांक की खिल्ली उडाये। इस प्रकार के प्रयत्नों को अधिक महत्व देने की आवश्यकता नही है क्योंकि मार्क्सवादियो ने भी समाज को सम्पत्ति सहित तथा सम्पत्ति रहित इन दो वर्गो मे विभाजित किया है। कम्यूनवादी रुस और चीन मे समाज के भीतर का यह श्रेणी विभाजन पूंजी वादी अमेरिका अथवा पश्चिमी जर्मनी की अपेक्षा कही दस गुना असमान है। वैज्ञानिक श्रेणी विभाजन के आधार पर विभिन्न श्रेणियों के लोगों के वेतन की विषमता का क्या आधार होना चाहिए-यह एक स्वतन्त्र शोधका विषय है। इतनाही कहना पर्याप्त होगा कि इस विषय पर प्राचीन भारतीयो के विचार भी अपेक्षाकृत अधिक प्रगतीशील, श्रेष्ट तथा वैज्ञानिक थे। कुछ तो हो मध्यम वर्गीय जीवन मूल्य सूचकांक का सिद्धात समाज के अन्दर के श्रेणी विभाजन से सम्बद्ध है और इस सम्बन्ध मे वर्गविहीनतावाद की कोई उपयुक्तता नही है! इतिहास मे ऐसे किसी समाज का पता नही चलता है कि जो श्रेणी रहित हो और आज के औद्योगिक और गतिमान समाज मे वर्तमान विभिन्न श्रेणियों की आवश्यकताओ के मूल्य मापक यन्त्र अर्थात् जीवन मूल्य सूचकाक की अवहेलना करके कोई आर्थिक न्याय भी नही किया जा सकता। मध्यम वर्गीय जीवन मूल्य सूचकांक तथा उस सूचकांक का असली वेतन के रूप में शत प्रतिशत श्रेणी विभाजन बैंक कर्मचारी आन्दोलन के लिये अपरिहार्य है। इस प्रकार की मांगो को लेकर चलने से इंकार करने वाले ए. आई. बी. ई ए. के कम्यूनवादी बैंक कर्मचारियो के लिये कम से कम पर समझौता करने की अपनी पुरानी चाल खेल रहे है और उस बैंक कर्मचारियो के आन्दोलन को गरीब मजदूर वर्ग के नाम पर देश द्रोही क्रान्ति जो वे करने वाले है की ताप का ईंधन बनाने का प्रयत्न कर रहे है। यह अच्छा मौका है कि राजनीतिक उद्देश्यों से प्रेरित मजदूर संगठनो के संचालन मे कम्युनवादियों की इन चालों का पूरी तौर पर भंडा फोड किया जाय।

## हास्यास्पद शोषण

ऐसे उदाहरण जिसमे कम्यूनवादियों ने बैंक कर्मचारियों का शोषण किया है सचमुच मे हास्यास्पद है। 'समान कार्य के लिये समान वेतन" एक ऐसा सिद्धात है, जिसकी घोषणा वर्कर्स आर्गनाइजेशन नें बडे जोरो से की है। एक असमान वेतन राशी (Pay packet) जिससे देश के विभिन्न अंचलो में समान उपभोग्य सामग्रा व सेवायें उपलब्ध की जा सकती है-- यह मांगो को पूरा कराने का स्वाभाविक तरीका है। किन्तु कम्यून वादियों ने यह दिखाने की कोशिश की है कि उन्होंने आबादी के आधार पर भत्ते मांग कर इस समस्या को हल कर लिया है। इस वास्तविकता के अलावा कि किसी विशेष संख्या पर ही उदाहरणार्थ ७ लाख परन कि ५ लाख आबादी को विभाजित करने के पीछे कोई तर्क नही है साथ ही विभिन्न अंचलो के लिये विभिन्न भत्ते की मांग के औचित्य से भी आबादी का आधार निरर्थक हैं। क्या इसको इस तरह कहा जाय कि यदि अपने शहर के लिये अधिक भत्ते प्राप्त करना चाहता हूं तो मुझे आबादी बढाने का प्रचार करना चाहिये और हमें परिवार नियोजन केन्द्रो पर मोर्चा लगाना चाहिए, क्योंकि हमारे भत्ते मे कमी हो रही है। यह तर्क का मजाक उडाना है। भारत सरकार के केन्द्रिय सांख्यिकी संगठन ने विभिन्न नगरों की तुलनात्मक महंगाई के आकडे प्रकाशित करने की अपनी इच्छा की घोषणा की है। वास्तव मे ये वे आंकडे है जो कि विभिन्न नगरो की आर्थिक मांग की दृष्टि से उपयुक्त है, न कि आबादी का संख्या। श्रमिक विरोधी ए. आई. बी. इ. ए. इस वस्तु स्थिती को छिपा करके रखना चाहती है।

मैं इस बात का संकेत तो कर ही चुका हूं कि ए० आई० बी० ई०ए० न्यूनतम व अधिकतम वेतन की दूरी से सम्बन्धित कोई आंकडा नहीं प्रस्तुत करना चाहती है। यह (ए० आई० बी० ई० ए०) अपने इस विचार को कि एक मध्यम वर्गीय कर्मचारी के सामान्य परिवार में केवल ३ सदस्य होते हैं-की रट लगाती है जब कि मध्यम वर्गीय सर्वेक्षण

के अनुसार औसत परिवार के सदस्यों की संख्या ६ है। यह (ए० आई० बी० ई० ए०) वैज्ञानिक पदोन्नति नीति (Scientific Promotion Policy) निर्धारण सम्बधी संसार में एकत्रित समस्त अनुभवों की अवहेलना करना चाहती है। यह बैंकों के श्रमिकीकरण का विरोध करती है और चाहती है कि बैंक कर्मचारी एक निर्जीव नीरस सरकारी उद्योग का एक अंग तथा सरकारी यंत्र का एक गुलाम मात्र बन जाय जिससे कि वह भी जीवन बीमा निगम के कर्मचारियों की भांति आटोमेशन के कारण उत्पन्न छटनी के एक मात्र विकल्प को अथवा कम वेतन राशि स्वीकार करने के लिए विवश हो जाय। ए० आई० बी० ई० ए० की पूरी पंक्ति की पंक्ति मजदूरों की नम्बर एक की दुश्मन है।

## न्यूनतम व अधिकतम का ताल मेल

अभी हाल में भारत सरकार ने योजना आयोग में 'आय एवं जीवनस्तर विभाजन समिति' (Committee on Distribution of Income and Levels of Living) की एक रिपोर्ट प्रकाशित की है। इस रिपोर्ट का एक मात्र उद्देश्य आर्थिक सम्पत्ति के खपत के तरीको के द्वारा स्वतंन्त्र और समानता पूर्ण सामाजिक मनोवृत्ति व उसके जीवन मूल्यों का निर्माण करना है। कुछ श्रम-अर्थ शास्त्रियों ने अब यह अनुमान लगाया हैं कि राष्ट्रीय सम्पत्ति को इस प्रकार बांटा जाना है कि विभिन्न वेतन राशियां १८० रु० की न्यूनतम व १८०० रु० की अधिकतम दूरी के बीच श्रेणियों में बंट जाय जिससे कि १ व १० के अनुपात वाली न्यूनतम व अधिकतम आर्थिक लाभ के उद्देश्य की प्राप्ति हो सके! मध्यम वर्गीय सर्वेक्षण द्वारा प्रदर्शित मध्यम वर्गीय परिवार की आदर्श व्यय पद्धति (Model Expenditure Pattern के अनुसार एक औसत मध्यम वर्गीय परिवार को देश के शिक्षित समाज के लिये अपेक्षित स्तर पर किसी प्रकार जिन्दा रखने के लिये प्रति मास ३५०) की आवश्यकता है। देश के उत्थान के लिये आवश्यक है कि

मध्यम वर्ग के लोग विभिन्न आन्दोलनों उदाहरणार्थ —सहकारिता, मजदूर संगठन, साक्षरता अभियान, भारत सेवक समाज, राष्ट्रीय एकता आन्दोलन आदि के माध्यम से राष्ट्र निर्माण के कार्यों में भाग ले। इन कर्मचारियों के बच्चों से उम्मीद की जाती है कि वे बिभिन्न सामाजिक व शैक्षणिक कार्यों जैसे एन. सी. सी. अध्ययन यात्रा, प्राविधिक शिक्षण योजनायें आदि में भाग लें । केवल इसी उद्देश्य से सरकार की विभिन्न समितियों ने मध्यम वर्ग की, जो कि समाज की रीढ़ हैं—के सामरिक महत्व की घोषणा की है। यदि मध्यम वर्ग को इन अपेक्षाओं की पूर्ति करनी है तो एक औसत बैंक क्लर्क ( जो की मध्यम वर्गीय आन्दोलन की महत्वपूर्ण कडी है ) की वेतन लम्बान में (pay range) ३५० रुपये से ८०० रुपये प्रति मास होनी चाहियें और इस वेतन लम्बान में को १८० रु. से १८०० रु. तक की राष्ट्रीय वेतन लम्बान में उचित रीति से बैठाया जाय, जिसमें इसके साथ ही चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों को भी समानुपातिक वेतन क्रम मिल सके।

## बैंकों का स्वामित्व बैंक कर्मचारियों का

इस प्रकार के कछ सत्य हैं जिनसे एक मध्यम वर्गीय संगठन के नाते आपको भिडना होगा। राष्ट्रीय अर्थ तन्त्र में अपनें लिए इस प्रकार के स्थान पाने का प्रयत्न बैंकों की व्यवस्था में साझेदारी अथवा उनके पूर्ण निमन्त्रण की दृष्टि से भी आपको सिद्धाता प्राप्त करनी चाहिए। बैंकों का संचालक इस ढंग से होना चाहिए कि उसके द्वारा न केवल हमारी मांग के अनुसार योग्य न्याय प्राप्त हो अपितु साथ ही वे बैंकिग उद्योग के अपने उत्तरदायित्व अर्थात् वस्तुओं के मूल्यों को बढ़ने न देना तथा पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करने का योग्य निर्वाह कर सकें। यह इस उद्योग के लिये राष्ट्रीय अनुशासन है, जो कि हमारी मांग का एक अंग है। यदि पूंजीपति वर्ग इस कर्त्तव्य के पालन करने की स्थिति में नहीं हैं तो उन्हें चाहिए कि वे बैंको का स्वामित्व छोड दें

और इच्छक कर्मचारियों को भारत के बैंकिग उद्योग की व्यवस्था व उसका स्वामित्व लेने की अनुमति दें ।

## शुभकामना

मुझे भरोसा है कि नव निर्मित एन. ओ. बी डबल्यू. उपर्युक्त सभी महत्व विषयों पर बैंक कर्मचारियों को योग्य नेतृत्व प्रदान करेगा। इस आशा और विश्वास के साथ मैं इस नविन संगठन की सफलता की कामना करता हूं ।

# भारतीय शुगर मिल मजदूर संघ.

गोरखपूर (उ.प्र.)

दि. २६ एवं २७ मार्च १९६६

आज के इस अखिल भारतीय सम्मेलन के अवसर पर आप का स्वागत करते हुए मुझे हार्दिक हर्ष हो रहा है। मजदूरों का, मजदूरों के लिये मजदूरों द्वारा चलाया गया श्रमिक महासंघ अब तक चीनी उद्योग में नहीं था उसका निर्माण करने के लिये आप सब यहाँ एकत्रित हुये हैं, इसलिये मैं आपको बधाई देता हूं।

भारत की अर्थ रचना में चीनी उद्योग का बहुत बडा महत्व है। आज देश में लगभग १७५ चीनी संस्थान हैं जिनमे २,००,००० मजदूर काम कर रहे है। समूचे देश में ५१-५२ लाख एकड़ भूमि पर गन्ने की खेती होती है जिसमें कुल मिलाकर २० लाख किसान सम्बन्धित हैं। निजी क्षेत्र में कपड़ा मिलों को छोड़कर चीनी ही सबसे बड़ा उद्योग है।

भारतीय मजदूर संघ ने ६ साल पूर्व चीनी उद्योग क्षेत्र में प्रवेश किया। इस अल्पावधि में लगभग सभी सम्बन्धित राज्यो में हमारा कार्य प्रारम्भ हुआ है और उत्तर प्रदेश में राज्य स्तर पर चीनी महासंघ का भी कार्य चल रहा है। चीनी मजदूरो की सभी समस्याओं पर भी मजदूर संघ ने समय समय पर यथोचित मार्ग दर्शन किया है जिसके फलस्वरूप मजदूर संघ के नेतृत्व के विषय में चीनी मजदूरों में दिन प्रतिदिन अधिकाधिक विश्वास बढ़ता जा रहा है। अन्य मांगों के साथ हमने चीनी मजदूरों के लिये द्वितीय वेतन आयोग के नियुक्ती किये जाने को मांग कि था जिसके फलस्वरूप सरकार को आयोग नियुक्ती की घोषणा करनी पडी।

## द्वितीय वेतन आयोग

१६ नवम्बर, ६५ को भारत सरकार ने चीनी उद्योग के लिये द्वितीय वेतन आयोग नियुक्ति की घोषणा की जिसका हिमायतनगर हैदराबाद, केन्द्रीय कार्यालय है तथा इसके प्रधान श्री के० भीमशंकरन हैं। इस आयोग को यूनियन तथा फेडरेशन दोनों ओर से आवेदन–पत्र भेजा जा सकता है। ऐसे आयोग के नियुक्ति का मैं स्वागत करता हुं।

इस आयोग को निर्देश दिया गया है कि उसे अपनी सिफारिशों को पेश करने के पूर्व निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये।

१ प्रथम चीनी उद्योग वेतन आयोग को शिफारिशें तथा उस पर लिये गये सरकारी निर्णय।

२ Fair Wages Committee का प्रतिवेदन तथा उसमें निहित Fair Wage का सिद्धान्त।

३ विकसन शील अर्थ रचना में चीनी उद्योग की आवश्यकतायें–चीनी के निर्यात बनाये रखने तथा बढ़ाने की आवश्यकता।

४ चीनी उद्योग की विशेषताएँ।

५ सामाजिक न्याय की आवश्यकताएँ।

६ श्रमिकों को अपनी कुशलता बढ़ाने के लिये प्रोत्साहन मिले इस ढंग से Wage differentials कायम करने की आवश्यकता। और

७ परिणामों के आधार पर पारिश्रमिक देने की पद्धति इस उद्योग में लागू करने की वांछनीयता।

सरकारी विज्ञप्ति में यह भी बताया गया है कि :—

उत्पादन या उत्पादकता के आधार पर पारिश्रमिक की पद्धति लाई गई तो भी न्यूनतम वेतन का निर्धारण आवश्यक ही रहेगा, और

इस पध्दति के फलस्वरूप काम के बोझ तथा गति में अनुचित वृध्दि न हो यह भी देखना होगा ।

## हमारी प्रतिक्रिया

प्रथम वेतन आयोग की सिफारिशें, Fair Wages Committee के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त तथा सामाजिक न्याय की आवश्यकताएँ–इन तीनों बातों के विषय में सरकारी विज्ञप्ति का आग्रह स्वागत है। चीनी उद्योग की विशेषताओं को हर परिस्थिति में ध्यान रखना ही होगा किन्तु शेष तीन बाते खतरे से खाली नहीं है। निर्यात वृद्धि की आवश्यकता के नांम पर यह बताया जा सकता है कि विदेशी मंडियों में हमारी चीनी तब तक नहीं बेची जायेगी जब तक उसको हम स्पर्धात्मक कम कोमत में नहीं बेचते। कम कीमत में बेचना तभी सम्भव होगा जब उत्पादन का खर्चा कम होगा। पर उत्पादन का खर्चा घटाने का रास्ता क्या है ? क्या मालिकों के मुनाफे घटाना ? मध्यस्थ दलालों के कमीशन समाप्त करना ? सरकारी करों को घटाना ? अथवा ट्रांसपोर्ट का खर्चा कम करना ? नहीं। इसमें से एक की भी बात नहीं। खर्चा घटाने का एकमात्र रास्ता होगा मजदूरों का पारिश्रमिक घटाना। मजदूरों को ही इसके लिये बलि का बकरा बनाया जायेगा साथ ही उसके लिये तर्क भी सुन्दर शब्दों में उपस्थित किया जायेगा।

श्रमिको में कुशलता बढ़ाने के लिये प्रोत्साहन मिले इसलिये wage differentials, और परिणामों के आधार पर पारिश्रमिक–ये दोनो बातें मजदुरो को समाप्त करने वाली है। आज कहा जायेगा कि यह सब करतें समय सावधानी बरती जायेगी कि काम का बोझ तथा गति न बढे–यह तो कहने की बात है। और वह भी तब तक जब तक कि इस नई पद्धति का प्रारम्भ नही किया जाता। पद्धति का प्रारम्भ होने के पश्चात इस तरह के तर्क उपस्थित करनें की आवश्यकता थी किसी को प्रतीत नही होगी। मजदूर चिल्लायेंगे किन्तु अब वह पद्धति

सर्व स्वीकृति हो गई है, यही बताकर उनको दबा दिया जायेगा तथा काम का बोझ तथा गति बढ़ेगी । काम करने वाले मजदूरों का स्वास्थ्य खराब होगा । अतिरिक्त (surplus) और मजदूरों की संख्या बढेगी और उनकी छटनी होगी । फिर भी 'प्रगमनशीलता' के नाम पर ये सारी बातें बर्दास्त करने के लिये बताई जायेंगी । परिणाम टाले नहीं जा सकते । अश्रुविहीन अभिनवीकरण की घोषणा हमने कितनी ही बार सुनी । अभिनवीकरण का स्वागत करने के लिये श्रमिक तैयार हो जायें इस हेतु बताया जाता है कि उसके फलस्वरूप छटनी नहीं होगी, किसी को बेकार नहीं किया जायेगा । इस आश्वासन के आधार पर कुछ श्रमिक संस्थायें अभिनवीकरण का सुझाव मान लेती है किन्तु बाद में सारे दुष्परिणाम दिखाई देते हैं किन्तु उस समय चिल्लानें से कुछ लाभ नहीं होता । चीनी उद्योग में भी इसी की पुनरावृत्ति हो सकती है । इस सम्भावना का सामना करने के लिये हमें चीनी मजदूरों का संगठन बहुत प्रभावी तथा शक्तिशाली बनाना पडेगा ।

## न्यूनतम का निर्धारण

चीनी उद्योग के हर केन्द्र में न्यूनतम वेतन का निर्धारण वास्तविकता के आधार पर होना चाहिये । इसलिये केवल पुस्तकों का आधार अपर्याप्त है । हर केन्द्र में चीनी मजदूरों के परिवारों के औसत मासिक खर्चों की जाँच होनी चाहिये ।उसी के आधात पर न्यूनतम वेतन निश्चित हो ओर 'रिटेनिंग एलाविंस' किसी भी परिस्थिति में इस न्यूनतम से कम न हो ।

## जीवन निर्देशांक से सम्बन्ध

न्यूनतम से ऊपर सभी वेतन श्रेणीयाँ Job analysis तथा Job evaluation के वैज्ञानिक आधार पर निश्चित होंनी चाहिये । अब तक इस वैज्ञानिक ढंग का आधार चीनो उद्योग में नहीं लिया गया । वैसे ही

मँहगाई भत्ते को मूल वेतन में शत प्रतिशत शामिल कर देना चाहिये, और सम्पूर्ण वेतन का सम्बन्ध शास्त्रीय आधार पर पुनर्रचित जीवन निर्देशांक के साथ जोड़ देना चाहिये। चीनी मजदूरों का सही और असली वेतन सुरक्षित रखने का यही एकमात्र मार्ग है। रिटेनिंग एलाविंस' का भी सम्बन्ध इसी प्रकार जीवन निर्देशांक से जोड़ना चाहिये।

## हमारी मांगे

वेतन के अलावा अन्य प्रश्नों पर भी सर्वकष विचार करते हुये भारतीय मजदूर संघ ने चीनी मिल मजदूरों की ओर से निम्न मांगें प्रस्तुत की हैं।

१ चीनी वेतन आयोग के अन्तर्गत की त्रुटियों का सुधार किया जाय।

क–चीनी वेतन आयोग ने पुराने एवं अनुभवी तथा नवनियुक्त कर्मचारियों के मध्य gradation का अन्तर नहीं किया है। अतः पुराने श्रमशील एवं अनुभवी कार्यकरों को प्रति ३ वर्ष के अनुभव के आधार पर एक तरक्की दी जाय।

ख–सिपाही, चपरासी, लैब ब्वायज, सेन्टफूगल मशीन के कर्मचारियों एवं कामदार ऐसे दायित्वपूर्ण कार्यकारों को अकुशल श्रेणी में रखा गया है, उन्हें अर्धकुशल श्रेणी रखा जाय।

ग–केन क्लर्क, पेमेन्ट क्लर्क, सेन्टर इन्टर इन्चार्ज, केन सुपरवाईजर आदि जैसे लिपिक कर्मचारियों के श्रेणी–क्रम की विषमता हटाई जाय।

घ–मिल सेवा से मुक्त कर्मचारियों के रिक्त स्थानों की पूर्ति सेवा मुक्त कर्मचारियों के ही परिवार से किया जाय तथा उन्हें नई भर्ती में योग्यतानुसार प्राथमिकता दी जाय।

ङ–स्नानीय कर्मचारियों में से ही अनुभव के आधार पर रिक्त स्थानों की पूर्ति में पदोन्नति करने का नियम बनाया जाय।

च–सेवामुक्त कर्मचारियों को मिल से अन्तिम चुकता हिसाब पाने के साथ संचित कोष का धन भी देने की व्यवस्था की जाय।

छ–सेवामुक्त होने वाला कर्मचारी यदि सेवामुक्ति की अनियमितत को चुनौती देकर सिद्ध करना चाहता हो तो उसे विवादग्रस्त अवस्था में सेवामुक्त न किया जाय।

ज–वेतन आयोग के ग्रेच्युटी नियम के अन्तर्गत नॅशनल बेसिक पे हटाकर वर्तमान वेतन के आधार पर देने का नियम लागू किया जाय।

झ–उत्पादन के आधार पर बोनस देने का नियम लागू किया जाय।

ञ–छटनी की प्रथा समाप्त की जाय।

ट–सेवामुक्ति की अवधि ५८ वर्ष समाप्त कर कार्य क्षमता के अभाव के आधार पर किया जाय।

ठ–चीनी वेतन आयोग लागू होने के पूर्व के क्वार्टरों का किराया न लिया जाय।

ड–किराया देने वाले कर्मचारियों को क्वार्टर देना अनिवार्य किया जाय।

ढ–प्रत्येक क्वार्टरों की सफेदी व मरम्मत प्रतिवर्ष किया जाय तथा सफाई, रोशनी एवं पानी आदि की सुविधा उसमें अनिवार्य रूप से रहे।

## २–औद्योगिक विवाद अधिनियम में परिवर्तन किया जाय

अ–संराधन समिति द्वारा समाप्त किये गये विवादो का कारण अनिवार्य रूप से ज्ञात कराया जाय तथा पुर्नविचार करने क अवसर दिया जाय।

ब–मिल प्रतिष्ठान में सब कारोबार एवं साहित्य राष्ट्रभाषा हिन्दी में किये जाने का नियम बनाया जाय।

स–मजदूर एवं मैनेजमेंट के मध्य विवादो की पैरवी एवं संघ सम्मेलन में प्रतिनिधित्व हेतु सम्मिलित होने वाले प्रतिनिधियों को सवेतन छुटटी दिया जाय।

द–मजदूर सम्बन्धी सम्पूर्ण विवादो का हल, मिल प्रतिष्ठान में ही करने की व्यवस्था की जाय।

३–प्रत्येक मिल मे चौबीस घन्टे उपलब्घ रहने वाला प्रशिक्षित एवं अनुभवी चिकित्सक की व्यवस्था हो। दवा एवं उपचार का भेद-भाव न बरता जाय।

४–प्रत्येक मिल से ठेकेदारी प्रथा समाप्त की जाय।

५–स्थायी कार्यों पर अस्थाई मजदूर लगाने की व्यवस्था समाप्त की जाय।

६–श्रम एवं पूँजी के संतुलन एवं उत्पादन की वृद्धि के लिये मिल के प्रबन्ध मण्डल में मजदूरों की भी साझेदारी हो।

७–समान स्तर पर समस्त मौसमी कर्मचारियों रिटेनिंग को देने को प्रथा लागू की जाय।

८–मिल बन्दी में अस्थायी कार्यों पर मौसमी कर्मचारियो को ही प्राथमिकता दी जाय।

९–प्रत्येक मिल द्वारा कर्मचारियों के बच्चों को विद्याध्ययन हेतु प्राथमिक विद्यालय की व्यवस्था हो।

## सर्वंकष दृष्टिकोण

भारतीय मजदूर संघ एकाँगी संकीर्ण विचार को लेकर नहीं चलता। हम मानते हैं कि मजदूर, उद्योग तथा देश तीनों के हित एक ही दिशा में जाने वाले हैं। कठिनाई इसलिये पैदा होती है कि मिल मालिक राष्ट्रहित से अपने स्वार्थ को अधिक महत्व पूर्ण समझते हैं।

## उत्पादक

अक्टूबर–नवम्बर में प्रारम्भ होने वाले १९६६–६७ के मौसम में गन्ने का आधार भूत न्यूनतम मूल्य वही रहेगा जो चालू मौसम म है अर्थात ५ रुपये ३६ पैसे प्रति क्विन्टल। यदि गन्ने से १०.४ प्रतिशत या उससे कम मिठास निकलती है तो उसकी कीमत ५ रुपया ३६ पैसे प्रति क्विन्टल होगी। यदि मिठास इससे अधिक निकलती है है तो हर ०.१ प्रतिशत पर ४ पैसा प्रति क्विन्टल बढ़ जायेगा।

आगामी मौसम शुरू होने से पूर्व कारखानों द्वारा दी जाने वाली कीमत इसी आधार पर निश्चित की जायेगी यह घोषित सरकारी नीति है। क्या इससे उत्पादकों को संतुष्टि होगी? हमें इस विषय में संदेह है। तो भी इस विषय में अधिकृत प्रतिक्रिया प्रकट करने का काम उत्पादकों की प्रतिनिधि संस्था का है। यदि उसने इस विषय मे असंतोष प्रकट किया तो उनकी उचित मांगों को हमारा नैतिक तथा व्यावहारिक समर्थन अवश्य प्राप्त होगा।

## उद्योग और उपभोक्ता

इस वर्ष कुल मिलाकर ३३.५० लाख टन चीनी का उत्पादन देश में होगा। गत वर्ष की ७,००,००० टन चीनी अभी हमारे पास है

प्रतिमास २.३० लाख टन चीनी देश के लोगों के उपयोग के लिये खुली की जाती है। सुरक्षा, नेपाल, भूटान तथा सिक्किम के लिये एक लाख टन चीनी हम खर्च करते है। इस वर्ष केन्द्रीय सरकार लगभग पाँच लाख टन चीनी निर्यात करेगी। इस तरह देश में आठ लाख टन चीनी अतिरिक्त रहेगी। इस अतिरिक्त चीनी को 'खुला' किया तो चीनी का मूल्य कम किया जा सकता है। यह करना आवश्यक भी है। चीनी के साठों पर सरकार को अधिक एडवान्स देना चाहिये।

## भारतीय चीनी उद्योग अन्वेषण केन्द्र

हमारे लिये यह हर्ष का विषय है कि हमारे अखिल भारतीय चीनी श्रमिक महासंघ के निर्माण के पूर्व ही अपना भारतीय चीनी उद्योग अन्वेषण केन्द्र' प्रारम्भ हो चुका है। चीनी उद्योग के ख्यातनाम विशेषज्ञ श्री ठाकुरदास जी साहनी के नेतृत्व मे दिनांक ११-१०-६५ को इस केन्द्र का शुभारम्भ लखनऊ में हुआ। पिछले ३३ वर्षं के उत्पादन काल में सरकार तथा मालिकों द्वारा उपेक्षित भारत के इस क्रमांक २ के उद्योग का सर्वांगीण अध्ययन कर, केन्द्र प्रमुख श्री साहनी जी ने उत्तर प्रदेश, बिहार तथा पंजाब के चीनी उद्योग की, चतुर्थ पंचवार्षिक योजना की अवधि में सर्वतोमुखी प्रगति की योजना देश तथा सरकार के सामने रखी है। उपभोक्ता, मालिक, मजदूर तथा सरकार चारो को लाभान्वित करने वाली यह योजना है। उद्योग विषयक हमारी सर्वकष विचार पद्धति का सम्यक परिचय इस योजना के द्वारा होता है। हमारा दृष्टिकोण राष्ट्रीय तथा रचनात्मक है। यही उद्देश्य है अन्वेषण केन्द्र के निर्माण का। मैं सरकार से अनुरोध करता हूं कि वह इस योजना को अध्ययन करके स्वीकार करे। इसी में चारो तत्वों का कल्याण है।

इसके पूर्व जब चीनी सब वर्षो की तुलना मे अधिकतम हुई थी, तब चीनी की मिलों को सरकार ने ९७ करोड़ का एडवान्स दिया था; इस वर्ष का लाभ ध्यान में रखते हुये १४० करोड़ एडवान्स देने की

जरूरत है। इस दृष्टि से कृषि मंत्रालय को चाहिये कि वह अर्थ मंत्रालय के साथ वार्ता करे।

चीनी का बफर स्टाक रखने के विषय में सेन कमीशन ने सिफारिश की थी—उस पर अमल होना चाहिये। चीनी पर से करो का बोझ घटाना चाहिये। नियंत्रण के विषय में साधारणतः सोचा जाता है कि वह उपभोक्ताओं के हित में और मालिकों के विपक्ष में जाता है। चीनी की बात ठीक उल्टी है। चीनी पर से नियंत्रण हटाया तो उपभोक्ताओं को ही लाभ होगा—न कि मालिकों को।

उद्योग से सम्बन्धित सभी पक्षों मे अधिकतम महत्व रखने वाला पक्ष है उपभोक्ताओं का। मजदूर भी उपभोक्ता ही है। गन्ना उत्पादक चीनी उद्योग, उपभोक्ता और श्रमिक—चारों के हित परस्पर पूरक है न कि परस्पर विरोधी। इस सिद्धान्त के आधार पर चीनी उद्योग के विषय में वैज्ञानिक अन्वेषण करते रहना चारो के हितों की दृष्टि से आवश्यक है।

चीनी मजदूरों के संगठन तथा आन्दोलन को सही मार्गदर्शन करने का दायित्व आप सब प्रतिनिधि बन्धुओं का ही है। केवल श्रमिक-कल्याण की दृष्टि से चलनेवाला महासंघ आप निर्माण करेंगे तो उसके तत्वावधान में रचनात्मक दृष्टिकोण से अपनी प्रगति करना भारत के चीनी मजदूरों के लिये सम्भव नही होगा। अस्तु अवांछनीय, अराष्ट्रीय; व्यक्तिवादी, राजनैतिक प्रभावों से चीनी मजदूरों को बचाकर उनका राष्ट्रव्यापी प्रबल श्रम संगठन खड़ा करना यह आपका ही दायित्व है। इस दायित्व का निर्वाह करने में इस सम्मेलन को सफलता प्राप्त हो—यही भगवान से मेरी प्रार्थना है।

# भारतीय रेल मजदूर संघ

मुलुंड (महाराष्ट्र) २६ मे १९६६

आज के इस अखिल भारतीय सम्मेलन के अवसरपर सबका स्वागत करते हुए मुझे बहुत हर्ष हो रहा है। यह सम्मेलन अपने भारतीय मजदूर संघ तथा भारतीय रेल मजदुर संघ के प्रगति में एक ऐतिहासिक घटना सिद्ध होगी ऐसा मेरा विश्वास है।

हम लोगोंके परिपाठ के अनुसार सब लोगोंके साथ दिल खोलकर बातचीत कर उनका दुखदर्द समझकरहि उनको सही मार्गदर्शन किया जाता है। अर्थात इसी ढंगसे रेल कर्मचारियोंके विभिन्न श्रेणीयों (Catagory) की समस्याओंका विचार हो सकेगा। और अपने एक विशेष पारिवारिक भूमिका होने के नाते इसी तरह समस्याओंको निवारण करनेका हम प्रयास करें।

## समस्याओंकी जड

यह कहा जाता है कि जितने रेल कर्मचारी है उसके सौ गुना समस्यायें है। क्योकि सबकी मिलकर सामान्य समस्यांयें कुछ, फिर हर श्रेणी की समस्यांयें, फिर झोन की, डिव्हीजन की अलग अलग समस्यांयें, फिर हरेक कर्मचारी की अलग समस्यांये। तो इस तरह समस्यांओंका निराकरण हो, इसलिये उनका स्वरूप क्यां है यह समझ लेना चाहिये। कहा भी जाता है कि Diagnosis is half the cure अर्थात रोगका निदान करना इसपरहि कौनसी औषधी देना यह निर्भर होता है। तो पहिली बात रेलवेका पुनर्गठन हुआ उसमें कई समस्यांओंकी जड हमें मिलती है। पहले विभिन्न कंपनीयां थी, फिर उनके अलग अलग झोन बनाये गये।

झोन बनाते समय अनेक समस्यायें खडी हो गई। पुनर्गठन के पश्चात इतने साल बीत जानेके बाद भी सेवा शर्तों के विषयमे सब झोन्स् में (Unifromity) एक रूपता आ गयी यह नहीं कहा जा सकता। इतनाही नही तो हर झोन में विभिन्न डिव्हीजनों में सेवा की शर्तो के विषय में एक रूपता का अभाव दिखाई देता है।

और डिव्हिजनोके अलग अलग उपशाखाओंमें भी यही बाते विद्यमान है। तो सेवा शर्तो के विषयमें एकरूपता लानी चाहिये थी वह नही लायी गई इस कारण कई समस्यांये खडी हो गई।

समस्याओंका और भी एक कारण है। रेल की इस रचना के पीछ कोई भी शास्त्रीय आधार (Scientific basis) नहीं है। साधारणतः सेवा शर्तों के विषयमें, पदोन्नती के विषय में, (Promotional Avenues) चतुर्थ श्रेणी, तृतीय श्रेणींके बारेमें समस्यायें खडी होती है। सरकारने भी इसके पीछे बडे सोच समझ कर कोई विश्लेषणात्मक वैज्ञानिक आधार दिया हो ऐसी बात नही। यह एक सबसे गडबड की बात है। हम क एक छोटी छोटी बात लें।

## पदोन्न तोकी नीति निश्चित होना आवश्यक।

इस उद्योग में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारीयों के मनमें बहुत असंतोष है। कहा जाता है कि एक बार आदमी चतुर्थ श्रेणीमें पहुँच गया तो वह मरतें दम तक वहीं रहेगा। उसकी तरक्की होनेकी कोई आशा नही। तो सोच विचार न करने के कारणही यह परिस्थिती निर्माणहु यी है। विदेशोंमें इसके विषय में शास्त्रीय ढंगसे विचार हुआ है और उन्होंने यह कहा कि पदोन्नति की नीति हरेक उद्योग में निश्चित होनी चाहिये। और यह नीति निश्चित होनेपर मालिक लोगोंनें एक सिध्दांत स्वीकार कर लेना चाहिये। यह सिध्दांत याने "In Service training should receive priority over pre-entry education', याने Pre-entry

education अर्थात नौकरी में आनेसे पहले बाहर जो कुछ भी उनकी लिखाई पढाई होती होगी उसकी तुलना में नोकरी में रहते हुये उसको जो Training मिलती है उस Training का महत्व जादा समझना चाहिये। आज यह देखा जाता है कि तृतीय श्रेणी या और कहीं भी किसी भी खातें में रिक्त स्थान हो जाते ही एकदम Advertisement दी जाती है। किन्तु चतुर्थ श्रेणी में काम करने वाले कर्मचारीयोंको नौकरी में रहते हुअे उनको तृतीय श्रेणी में काम करने के लिये उपयोगी शिक्षा, Intensive training courses क्यों नही खोले गयें। अर्थात चतुर्थ श्रेणीसे तृतीये श्रेणी में भरती करने का निश्चित प्रमाण (Percentage) क्यों नही रक्खा गया। इसी लिये Direct Recruitment की हर जगह होड दिखाई देती है। एक तरफ मजदूरोंकी छटनी की जाती है, इस कारण की ये Surplus है, और दुसरी और नयी भरती की Advertisement दी जाती है। Direct-Recruitment जहां तक बने कमसे कम हो। और नीचे की श्रेणीसे अुपर की श्रेणी में लोगोंको लेनेकी व्यवस्था Service Training के द्वारा अधिक से अधिक हो इस सिद्धांत कके स्वीकार सरकार कर लेती तो यह आपत्ती न आती। किन्तु सरकार किसी भी योजना में तालमेल नही।

## अस्थायी मजदूरोंकी ( Casual labour ) समस्यायें

Casual labour के बारे में चारों ओरसे आज बडी चिल्लाहट हो रही है। आज लाख से जादा संख्या इनकी है। इनके लिये नियम तो बनाये गये कि इतने महिने काम करने के बाद उसको (absorb) सम्मिलीत किया जाय। किन्तु उसे शायद जान बूझकर यह अवधी पूर्ण होनेके ३-४ दिन पहलेही काम परसे निकाल दिया जाता है, और बादमें उसको फिर बुलाया जाता है। मानें हमेशा उसकी सेवा खंडीत हो जाती है। और यह बताया जाता है की उसकी सेवा (continuous) अखण्डीत न होनेसे उसे (absorb) नही किया जा सकता। इनके वेतन के बारेमें भी तरह तरह की समस्यायें हैं। तो यह De-casualisation की

हमारी माँग है। अस्थायी मजदुर इस बारह चौदाह साल अस्थायी मजदूर के नाते क्यों काम करें। उदाहरण के रूपमें रेल जैसे बहुत बडे महकमे में कही ना कहीं (constructionproject) निर्माण योजनां चलतेही रहती है। तो किसी एक बार यदि casual lauour के नाते एक ग्रुप को लिया है और यहाँ का निर्माण कार्य खतम भी हो गया तो दुसरी योजना पर उसको लगाया जा सकता है। इस तरह उसे Service में किसी तरह absorb किया जाय यह कठीनाई का बात नहीं। किन्तु खेदसे यह कहना पडता है कि सरकार के मनमें समस्या हल करने की प्रामाणिक इच्छा नहीं, केवल अपने जिम्मेवारीसे छुटकारा कैसे हो यही सोचा जाता है।

## सिनियॉरिटी और वेतन की समस्या

सदर्न रेल्वे के निर्माण के समय M. S. M. के विभिन्न श्रेणी कर्मचारीयो को सदर्न रेलवे पर absorb करने में जो अन्याय हुआ वह सरकार के अशास्त्रीय कारोबार चलाने की नीतिपर स्पष्ट प्रकाश डालती हैं। इसी कारण इस रेलवे पर Seniority के बारेमें हजारों अन्याय पूर्ण बातें आज भी दिखाइ देती हैं। जब एक रेलवे दुसरे में सम्मिलित (Merge) की जाती है तो कर्मचारीओंके Seniority और Pay Stage के बारेमें कुछ भी वैज्ञानिक या योजित विचार नही किया जाता। सरकार अपनी गलती मानकर भी अन्याय को दूर करना–न्याय देनेका सोंचा तो कुछ लोगो की टांग खिचनी होगी तो भी अन्याय हो जायगा, इस कारण सरकार के लिये संभव नही।

यही अनुभव वेतन वृद्धी के बारे में देखने मिलता हे। आज यह देखा जाता है की जो Superior ऑफीसर हैं उसकी तनखा कम हैं। और जो ज्युनियर ऑफिसर है उसकी तनखाजादा है क्योंकि बीचमें Scale मे परिवर्तन कर दिया। ज्युनिअर को जादा मिलने लगा पुराना है उसको कम मिलने लगा। Retrospectively लगायेंगे तो बजेट मे बैठता नही यह

समस्या आ जाती है। माने सदाही वेतन वृद्धी के विषय मे अव्यवस्था बनी रहती है। किन्तु इसपर किसी कर्मचारी द्वारा सरकार के पास (Representation) आवेदन दिया जाने पर उसे उचित न्याय मिलेगाही यह विश्वासपूर्वक नही कहा जाता क्यों कि न्याय कैसे दिलवाना यह सूझबूझ भी बडी कठीन हों जाती है।

अब एक नया झमेला खडा होने वाला है। South central Railway का निर्माण होगा। यदि सारी बातें जैसी बनाई वैसे हो गई तो अक्तुबर माह में सिकंदराबाद को केन्द्र बनाते हुये south central Zone का निर्माण होनेवाला है। वास्तवमे उसमे चार Divisions है। या तो चार Divisions मे ही सारा काम adjust करते तो seniority वैसे बनती। या south central या कुछ हिस्सा central में और कुछहिस्सा Southern में आता है। इसलियें दो Zones के लिये Option देते तो भी चलता अुन्होने सारे हिंदूस्थानमेसे Option मंगवाये। अब हमलोंगोंने कहा की सरकार ! सारे हिंदुथानसे Options मंगवाती है तो सिकदराबाद मे काम करने वाले जो कर्मचारी हैं अुनकी Seniority adversely affect हो जायेगी। तो मंत्री महोदयने कहा की नहीं आप व्यवहार जानते नहीं। व्यवहार तो यही है की जो आंध्र के हैं वेही जायेंगे। बडी भारी संख्या मे लोग थोडी ही जानेवाले है। क्योंकी सिकंदराबाद माने बंबई या कलकत्ता थोडेही है। बड़ा देखने जैसा शहर भी नही है। उसका कोइ आकर्षण नही। इसलिये सारे हिंदुस्थानसे Options मंगवाये। अब अुसी समय ऐसा हुवा था की North-East Frontier Zones में कछ लोगोंको ऐसेही, Service मे ले लिया था अुनका Confirmation भी हो गया था लेकिन अुनके लिये कोई Vacancies नहीं थीं। रेल्वेमें सब चलता है। अब अुनका क्या किया जाय? तो फिर निर्णय हुवा की लगभग १५० लोग जो वहां काम कर रहे थे उनकी case हमने अुठानी चाहिये। १५० लोग हैं इतने महिने तक इन्होने काम किया है confirmation तो हो जाना चाहिये। सरकारनें कहा, होना तो चाहिये। लेकिन बोले वहां Vacancies नहीं है। हमने कहा

कुछ भी किजीये भुनको जगह तो मिलनी चाहिये। तो हमने ही कहा था central में Seniority adversely affect नहीं होनी चाहिये । फिर ये १५० लोगो का क्याहोगा । सरकारने हमारी बात हमारेही गले अुतारी १५० लोगों को यहां Transfer करने का निर्णय कर लिया । अब इसका मतलब क्या ? की कोई कानून नही कोई नियम नही कोई तर्क नहीं । जिस समय जैसे बात जचेंगी वैसे करते जाना ।

## रेल दुर्घटना ( Accidents )

यह स्पष्ट है की रेल उद्योग मे तरह तरह के अन्याय आज चल रहे हैं । कुछ रेलवे मिनीस्टर ऐसे भी हैं जिनको इन विषयोमें कोई रूची नहीं । वे केवल अपने चुनाव क्षेत्र को मजबूत करनें में पडे हैं । इसके कारण बहुत पुराने नियम और कानून जैसे थे वे आज भी चल रहे हैं । जैसे रेल दुर्घटना की बात चली तो क्षतिपूर्ती (compensation) कैसे मिलनी चाहिये ये कानून १८९० का हैं । इसमें बदली हुयी परिस्थितिमें परिवर्तन करना चाहिये । किन्तु (रेलवे बोर्ड) नोकरशाही भी सोचती है की हमे करना क्या है । यह भी आश्चर्य की बात है की कर्मचारीयोने नियमोंका उलंघन किया इस लिये दुर्घटना हो गई ऐसा अधिकारी कह देते हैं । क्योकि हम जानते हैं की यदि बनाये हुये नियमो के अनुसार एकेक Operation के लिये जो Time Schedule बनाया हुआ है उसपर कर्मचारी अंमल करेंगे तो २४ घण्टे में रेलवे का सब काम ठप हो जायगा। यह बात सत्य है कि नियम के अनुसार लोग काम नहीं करते इस लिये आज रेल चल रही है । अंत तो गत्वा Work to Rule यह एक हड़तालसे भी अच्छा हथियार बन गया है। किन्तु इसमें परिवर्तन लानेका कष्ट किसीने अपने दिमाख को नही दिया हैं ।

## राष्ट्रीय न्यूनतम वेतन

शास्त्रीय दृष्टीकोन सामने रखकर हमने यह कहा की हिन्दुस्थानके

हरएक औद्योगिक केद्रमें मजदूरोंके महावार खर्चों की जांच हो। अब हमने कहा की खर्चे तरह तरह के होते है। कुछ खर्चे हर हप्तेमें होते हैं। जैसे नमक तेल मिर्च हैं। कुछ खर्चे महिनेमें एक बार होते हैं जैसे दाल चांवल आटा हैं। कुछ खर्चे सालमें एक दो बार होते हैं जैसे कपडा है। कुछ दो चार सालमें एक बार होते हैं, जैसे जुता, छाता है। कुछ पांच छः सालमें एखाद बार होते हैं जैसे बहैन की, लडकी की शादी है। लेकीन सब खर्चों का हिसाब करना चाहिये।

और वास्तविकता के आधार पर मजदूर के परिवार में औसत संख्या कितनी होती है। और कुल मिलाकर अुनका औसत खर्चा क्या होता है। इसका अंदाजा निकालना चाहिये। और वह जो अंदाजा निकलेगा अुसको राष्ट्रीय न्यूनतम National Minimum समझना चाहिये। और यह जो National Minimum रहेगा वह हिंदुस्थानके Unskilled Worker को मिलना चाहिये। यहांसे न्याय का प्रारंभ है। हमारा जो Class IV Worker है, जो बिलकुल नया है, जो बिलकुल पढ़ा लिखा नहीं अुसको कितना मिलना चाहिये तो equivalent to National Minimum.

फिर Job evaluation हो। अब Job evaluation का आपको पता है। जो विभिन्न काम हैं, हर काम में मेहनत कितनी अुठानी पडती है, कितनी तकलीफ है, कितनी परेशानी है। मानसिक शारीरिक परेशानी कितनी है, अुस में Risk कितनी है, कितनी बुद्धीमानी की आवश्यकता हैं, कितने सातत्यकी आवश्यकता है, सभी बाते देखनी पडती है। पाश्चिमात्य देशोमे Job evaluation का तंत्र अुन्होंने विकसित किया है। अुस तंत्र के आधारपर रेल्वे जैसे बडे अुद्योग में हर Job का evaluation होना चाहिये। अुसमें Marks, मिलते है याने कुशलताके लिये इतने Marks, साहस के लिये इतने Marks सातत्य बुद्धी मानी के लिये इतने Marks । और सारा जो अुसका आराखडा तय्यार होगा तो अुस में Job evaluation के आधार पर जिसको जितने Marks

मिले होंगे अुसके आधारपर unskilled worker को मिलता है । वह National Minimum अुसके तुलना में Job evaluation में जिस catgory को जितने मार्कस् जादा मिलेंगे अुतनी अुसकी वेतन श्रेणी अुंची रहे यह हिसाब यह दुसरी बात । याने पहिली बात National Minimum तय हो और वह unskilled worker को मिले । दुसरी बात हरएक Job का मुल्यांकन हो Job evaluation हो । और unskilled worker को जो National Minimum मिल रहा उसकी तुलना मे उसको वेतन श्रेणी कितनी मिले क्या मिले यह तय हो ।

तिसरी बात जिसको जो वेतन मिल रहा है वह उसका वेतन सुरक्षित रहे । बाजार मे चिजों के दाम बढे इसलिये उसका असली वेतन कम न हो जाय इस दृष्टिसे हरेकके वेतन की टांग जीवन निर्देशांक के साथ जोडी जाय । अर्थात तनखा स्वयमेव बढेगी और आन्दोलन करने की आवश्यकता न होगी । यह चार बाते यदि हो जाती है जिसमे In service training का भी अंतर्भाव हो जाता है तो मजदूर को। कर्मचारीयों को आर्थिक न्याय प्राप्त होने की भूमिका बन जायगी ।

## महंगाई और महंगाई भत्ता

आज महंगाई आसमानसे छूने जा रही है यह कहना अत्युक्त नही होगा । सरकारने कमिशनस् बिठाये किंतु इसका पूर्ण निराकरण नही हुवा । भारतीय मजदूर संघका इस महत्त्वपूर्ण विषयपर कुछ मंतव्य है । हमने कहा की किमते जो बढती है, क्यो बढती है और किस कारण से किमते कितनी बढी है इसका विश्लेषण होना चाहिये । इसके तीन प्रमुख कारण माने गये है:—

१) देशमे चीजों का अभाव । २) मुद्रा स्फीती ओर ३) मुनाफाखोरी । किस कारण कितनी किमते बढ गई इसका विश्लेषण (cause wise break up) हो । और जितना percentage मुनाफाखोरी के कारण बढा होगा उसका बोझ मुनाफाखोर लोगोंके कंधोंपर जाना चाहिये । जितना मुद्रास्फीती (Deficit Financing) के कारण

होगी उतना बोझ सरकारके कंधोंपर जाना चाहिये। और वास्तवमें चीजोंके अभाव के कारण जो (Inflation) मुद्रास्फीती हुवा होगा जो किमते बढी होगी उतनाही बोझ नागरिकोंपर जाना चाहिये।

साथही भारतीय मजदूर संघका पहला कहना यह है की राष्ट्रवादी होने के नाते प्रतिरक्षा (Defence) और नव निर्माण (Development) दोनों का बोझ नागरिकोंने बरदास्त करना चाहिये। किन्तु साथही हम यह कहते है की जो बिल्कुल गरीब चतुर्थ श्रेणी के हमारे कर्मचारी है, १०९ या उससे भी कम जिनकी तनखा है उनके कंधोंपर यह बोझ देने की आवश्यकता नही। भारतीय मजदूर संघने जो सिद्धांत बताया की भारत मे कम से कम और ज्यादा से ज्यादा आमदनी मे केवल एक और दस इतनाही फर्क होना चाहिये। इस बात को कार्यान्वित करने से और अन्य रास्तोसे भी पैसा आ सकता है। अर्थात जो बोझ होगा वह उन कंधोंपर होना चाहिए कि जो कंधे उन्हे बरदास्त कर सकते है सभी कर्मचारीयोंकी यह मांग है की महंगाई का पूरा Neutralisatiou होना चाहिए। इन सब बातोंका राष्ट्रीय दृष्टिकोनसे विचार होना चाहिये भा. म. संघ इस नीतिपर पहुंच गया है की महंगाई भत्ता यह पद्धती (system) हीं खतम करनी चाहिये। दूसरे महायुद्ध के समय यह केवल war allwance के नाते दिया जाता था यह समझकर की युद्ध समाप्त होनेपर मूल्य स्थिर होंगे महंगाई कम हो जायगी। किंतु आज जब महंगाई यह स्थायी अवस्था हो गई इस परिस्थितीमे महंगाई के रूप मे पैसा अलग रखना इसका अर्थ इतनाही होता है की pension provident fund और Gratuity के रूप मे जो हमारा वास्तविक जायज पैसा है उससे हमे वंचित रखना इतनाही मतलब है। जैसे ४० रु. मूल वेतन और ७० रु. महंगाई यह अगर Textile worker को मिलता है तो Gratuity, Provident Fund, Pension उसे ४० रु. के आधारपर मिलेंगे ११० के आधारपर नही। और इस तरहसे महंगाई भत्ता मूल वेतनमे शत-प्रतिशत सम्मिलित करनेपर जो संपूर्ण वेतन (subject to National minimum) किसी भी हालत मे

राष्ट्रीय न्यूनतम वेतन से कम नही होंग। और इस संम्पूर्ण वेतन का संबंध जीवन निर्देशांक के साथ जोडना चाहिये। केवल commission नियुक्त करने से काम नही चलेगा वह केवल समय काटनेवाली बात हो सकती हैं।

## राष्ट्रीय वेतन नीति तथा राष्ट्रीय मूल्य नीति निर्धारण की आवश्यकता:—

वास्तवमे आवश्यकता इस बात की है कि सरकारने आजकी संपूण आर्थिक अवस्था का विवरण जनता के सामने रखते हुये अपनी कठि-नाईयाँ सामने रखते हुये आर्थिक समस्याओंसे संबंधित सभी पक्षों को Round Table conferance मे बुलाना चाहिये। इस तरह एकप्रकारसे National debate जनता के फोरम पर होकर (National Wage Policy) हमारी राष्ट्रीय वेतन नीति क्या हो और निकटमे राष्ट्रीय मूल्य नीति क्या हो, यह तय होना चाहिये। इसमे जनता की भी जानकारी बढेगी। वह प्रशिक्षित होगी। एक (Psychological enviornment) मनोवैज्ञानिक वायुमंडल हो जायगा और फिर उस वायुमंडलके दबाव के कारण जनता विरोधी बातें करनेका साहस न सरकार को न मालिकोको न मजदूरोंको होगा। उदाहरण के लिये एक काम अपनें सामने है। कुछ पाँच छ: महिने पहले विल्सनकी Labour Govt. ने एक Price policy तय की। ब्रिटेन के विशेष परिस्थिती के कारण यह Price policy ऐसी थी की जिसमे गरीब जनतापर बोझ बढ़नेवाला था। इसमे अर्थातही औद्योगिक मजदूर ज्यादा आता है। तो उन्होने British Trade Uniun Council की मिटींग बुलाई। स्वयं Finance Minister को Trade Union council को और से cross examine किया गया। उन्होंने सारे तथ्य और आंकडे General Council के सामने रखे और सारे तथ्य और आंकडे सामने आने पर दुःख के साथ, अनिच्छा के साथही क्यों न हों देशभक्त होने के नाते मजदुरो के नेताओं को कहना पडा की बात सत्य है। और कहा की Lobour Govt. ने जो Price pol-

icy तय की है, वास्तवमे हमारा बोझ बढानेंवाली बात है, फिर भी हम उसें स्वीकार करते है। किन्तु दुःखसे यह कहना पडता है की हिंदुस्थानमे अवमुल्यन जैसे अत्यंत महत्त्वपूर्ण निर्णय भी हमारी राष्ट्रीय सरकार होने पर भी सभी आर्थिक क्षेत्र के पक्षों को विश्वासमे लिये बिना ही निर्णय किये जा रहे है। यहां तक की Parliament को भी विश्वास मे नही लिया गया। Congress को पूछा नही उनके Working Committee को पूछा नही। भा. म. संघ का यही एक मौलिक विचार है की सभी संबंधित पक्षो को एक National debate मे बुलाकर राष्ट्रीय वेतन नीति तथा राष्ट्रीय मूल्य नीति का निर्धारण हो। इस तरह से मजदूरों को और नागरिकोंको विश्वास मे लिया गया तो योजनाओ के बारे मे, स्वार्थ, त्याग के बारे मे हर एक आदमी देशभक्त होने के नाते अधिक उत्साहित हो सकता है।

## उद्योग का स्वामित्व

भारतीय मजदूर संघ की अपनी विशेषताके अनुसार उद्योगोंके स्वामित्व के विषय मे भी हमारा कुछ मौलिक विचार है। स्वामित्व का ढांचा क्या रहे इस विषय मे दिशा दर्शन किया हुआ है। संक्षेप मे हमने यह कहा कि कम्युनिस्टों के समान सभी उद्योगों के लिये एकही ढांचा लागु हो यह कहना माने Nationalisation हो यह कहना याने सरकारी करण होगा। यह गलत है। विचारोंका Regineutation नही हो सकता। यह अव्यवहार्य है। तरह के उद्योग है उसकी तरहकी प्रकृति है और विशेषतायें। हर एक उद्योग की विशेषतायें तय करके उसके स्वामित्व के ढांचे का विचार करना पडेगा। जिसमे Private Capitalism आ सकता है, Municipalisation आ सकता है, Cooperativisation आ सकेगा जिसमे (Labourisation) श्रमिकीकरण आ सकता है। श्रमिकीकरण की परिभाषा करते हुये हमने कहा की हरेक उद्योग मे मजदूर के पसीने का मूल्य भाग को (share) शकल मे करते हुये मजदूर को उद्योग का सहभागी बनाना (shareholder) यह एक शकल Labourisation हो सकती है। जहां

Private Employer के साथ से उद्योग छिनना है वहां सरकारके हाथ मे न देते हुये सरकारीकरण यदि उद्योग का हुवा होता तो जिस तरहसे सरकारी खजानेसे पैसा ओर तांत्रिक मदत (Technical aid) उस उद्योग को प्राप्त होती उसी तरहसे उतनीही Technical aid और पैसा उस उद्योग को देते हुए वह उद्योग उस उद्योग के काम करनेवाले मजदूरों के हाथ मे देना चाहिये और उनके द्वारा वह दोनो बाते चलना चाहिये यह इसकी शक्ल श्रमिकीकरण की और जहां दोनों बाते उद्योग के विशेष स्वरूप के कारण नहीं चल सकती वहां उस उद्योग का एक Autonomous Corporation निर्माण होना चाहिये। स्वायत्ता निगम निर्माण होना चाहिये यह केवल नाममेही स्वायत्त न रहे जैसा LIC का उदाहरण है। तो वास्तवमे जिसमे स्वायत्तता है ऐसा स्वायत्त निगम निर्माण होना चाहिये जिस Corporation के Management पर Board of Directors पर उस उद्योग से संबंधित सभी पक्षोंका प्रतिनिधित्व होना चाहिये। जिसमे उपभोक्ताओंका प्रतिनिधित्व Parliament के द्वारा और कर्मचारियोंका प्रतिनिधित्व उनके युनियनस् के द्वारा होने चाहिये और इस तरह का श्रमिकीकरण की तिसरी शक्ल होगी।

और रेल्वे के लिये यह तिसरी शक्ल जो तिसरा स्वरूप है यह लागू किया जाव यह हमने कहा, रेल्वेकी स्वायत्त निगम Board of Management पर यात्री उद्योगपति, बेपारी आदि के प्रतिनिधी भी लिये जाने चाहिये।

इस तरह विदेशियोंके अंधानुकरण के आधारपर नही अपितु स्वयं प्रतिभा के आधारपर भारतीय मजदूर संघने मजदूर क्षेत्र मे मोलिक मार्गदर्शन किया है।

## रेल उद्योग मे भारतीय मजदूर संघ

रेल उद्योग मे हम क्यों आये? इसलिये नही की केवल एक नयी Union खोलनी थी। यह भी नही की किसी के व्यक्तीगत नेतागिरी के तथा राजनैतिक स्वार्थ को सिद्ध करना था। तो इसलिये की मजदूरों

की समस्याका हल निकले और राष्ट्रवादको चौखट के अंतर्गत उनका कल्याण हो। इस विषय मे हमारे विचार स्पष्ट है। (१) हम संपूर्ण मजदूर क्षेत्र को दो हिस्सों मे विभाज्य करते है। कम्युनिस्ट और राष्ट्रवादी (२) हम राजनैतिक दल का विचार नही करते। हम केवल दो जाति की कल्पना करतें है। एक राष्ट्रद्रोही दूसरी राष्ट्रभक्त। Communist राष्ट्रद्रोही है यह खूले आम घोषित करते हैं। और उनका विरोध करनेवाले जितने पक्ष है वे राष्ट्रभक्त। हम यह चाहते है की सभी राष्ट्रवादी लोगोंको मिलकर राजनीतिसे निरपेक्ष रहनेवाली एकही युनियन एक एक उद्योगमे निर्माण हो। किन्तु इसमे हमारी शर्त एकही है की जिस दरवाजेसें राजनीती अंदर घुसती है वह दरवाजा याने संबद्धता (affiliation) बंद करना। ना इंटक के साथ, ना हिंद मजदूर के साथ किसीके भी साथ संबद्धता न रहे। साथही Trade union के बाकी काम होने की आवश्यकता है। जैसे रेल्वे मजदूरोंका ठीक संगठन (३) Administration के साथ आवश्यकता पडनेपर सफलता के साथ संघर्ष और इस क्षेत्रमे Communist को रोकना। आज के नेतृत्वमे यह क्षमताका संपूर्ण अभाव है।

## मान्यता केवल एक मृगजल

किंतु दुर्भाग्यसे आजकी युनियने रेल के मजदुरों की समस्याओंको हल नही कर सकी। Management के साथ टक्कर देनेकी क्षमता खतम हो गयी तो मान्यता की लालच पैदा हुई याने vested interest का निर्माण हो चुका। यह नेता मान्यता को बनाये रखने के लियेManagement के खिलाफ कोई भी हथियार उठा नही सकते। अर्थात मान्यता के कारण उनकी ताकद बढी नही कम हुई यह स्पष्ट है। तो जिनको केवल मजदूरोंकी भलाईकीही इच्छा है, जो हृदय से काम कर रहे है वही लोग टक्कर ले सकते है। १९६० की जुलाई का हडताल इसका परिचायक है।

तिसरी बात भी हम ख्याल रखें उस महत्त्वपूर्ण उद्योग मे जिस उद्योगको वास्तवमे हिंदुस्थानकी (Life Line) जीवन रेखा कहा गया है गद्दार राष्ट्रद्रोही कम्यूनिस्टों को नही घूसने देंगे। कल्पना किजीये की इन युनियनोंपर कम्युनिस्टो का कब्जा होता है और उधर चायना या रुस का हमला होता है तो क्या होगा हिंदुस्थानका यह कल्पना आप किजीये। तीनों कसोंटियोपर आज-की युनियनें असफल रही हैं। और यदि हम आगे नही आते तो इस दुर्बल नेंतृत्व को पीछे खदेडते हुये कम्युनिस्ट सारी भूमि व्याप्त कर लेते इसलिये हमे रेल उद्योग मे आना पडा। अर्थात भारतीय रेल्वे मजदूर संघका निर्माण यह रेल मजदूरोकी ऐतिहासिक आवश्यकता थी।

## हमारी प्रेरणा तथा आदर्श

यह बात भी स्पष्ट है की हमारा उत्तरदायित्व भी बढा है। हमारी प्रेरणा हमारी उत्कट देशभक्ती मे है। हम उत्कट देशभक्त हैं इसलिये हम मजदूर क्षेत्र मे आये। और उत्कट देशभक्त के नाते हम इस देशके हरेक व्यक्तिपर प्रेम करते है। जितना मेरा मेरे उपर प्रेम है उतना मेरा मेरे इस देशके प्रत्येक व्यक्तिपर प्रेम है। मैं हिन्दुस्थानसे कोई भी आदमी भूखा नही देख सकता। यह प्रेम मे कोई Returns की अपेक्षा नही। हमारे भारतीय आदर्श है, की फल का त्याग करो। और कर्मफल का त्याग करना यह भा. म. संघ का विचार है। हम कृतज्ञता भी नही चाहते। इस संबंध एक उदाहरण हम सबने हृदय मे अंकित करने योग्य है। ईसा एक गाँव से दूसरे गाव जा रहे थे। बीचमे एक महारोगी की बस्ती थी। वहां ११ कुष्ठ रोगी थे। उन्होने सुना था की ईसा रास्तेसे जा रहे है। वो सभी जानते थे की ईसा करुणामय है तथा यह भी की ईसा जिसको हाथ लगायेगे स्वर्णकांति हो जायेगा। तो ये ग्यारह लोग उनके सामने गये। ईसा तो करुणा के सागर ही थे। उन्होनें कुष्ठ रोगियोंको हाथसे स्पर्श की या तो उनकी स्वर्णकांती हो गयी लेकिन आश्चर्य की बात की ये कुष्ठरोगी जिनको मकान वालोने कुष्ठरोग होते ही खदेड दिया था, जिनकी

पत्नियोंने इनका मुह देखने से भी इन्कार किया था जैसे ही प्रभूके इस हस्तस्पर्श मे और वे अच्छे हो गये तो प्रणाम करने के लिये भी नही रुके। लेकीन उनमे एक आदमी ऐसा था की पत्निको और बालबच्चोको मिलने के बाद याद आयी की अरे यही तो पत्नि है जिसको मैं प्रिय समझता हू लेकिन यही है जिसने जैसे ही कुष्ठ रोग हुवा मेरे से बात करने के लिये भी इन्कार कर दिया था। ये इतनी कृतघ्न इसके लिये मै दौडकर आ गया और अब ईसा की चरणोमे समर्पण कर देना यही कर्तव्य है। इस तरह ११ मे से केवल एक इतनी कृतज्ञता जब इसाको मिलती है तो हम तो मामुली आदमी है। इसलिये हमारा मातृहृदय होना चाहिये। यही हमारा जीवनमूल्य है और इसमे हम सफल हो गये की मेरे उद्योग मे काम करनें वाला हस्तक मजदूर मेरा लडका है इस तरह उत्कट मातृप्रेम हमारे हृदयमे रहा फिर मान्यता रहे ना रहे हम सफल हो सकेंगे। उस आदर्श को लेकर भा. म. संघ का हर एक कार्यकर्ता खडा हो चुका है। सफलता हमारीहोनेंवाली है क्योंकि हम यदि असफल हो जायेंगे तो हिन्दुस्थानका राष्ट्र असफल होग। और यदि हिन्दुस्थानका राष्ट्र सफल होगा तो हम सफल होकर रहेंगे। हमारा यह उच्च आदर्श, हमारा यह जीवन मूल्य, हमारा यह मातृहृदय, और इन सबके विषय मे प्रेरणा देनेवाला हमारा वह परम्परागत ध्वज और इसके नीचे चलनेवाले हम सिपाही इस आधार पर रेल मजदूर क्षेत्र मे जैसे सूरज ऊपर आनेपर कई सितारे और चांद भी दिखाई नही देतें, भारतीय रेल मजदूर संघ आनेपर थोडेही समय के अन्दर क्या AIRF क्या NFIR सितारों के समान लुप्त हो जायेंगे इसमे मुझे कुछ भी संदेह नही

****

# भारतीय प्रतिरक्षा मजदूर संघ,

मुरादनगर (जि. मेरठ) दि, ११ व १२ मई, १९६८

आज का दिन भारत के ट्रेड यूनियन आन्दोलन के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा जायगा। क्योंकि प्रतिरक्षा संस्थानों के कर्मचारियों की राष्ट्रवादी फेडरेशन का निर्माण करने हेतु आज आप सब बन्धु यहां एकत्रित हुए हैं। देश की सुरक्षाकी दृष्टि से इन संस्थानों का महत्व विशेष है। इनमें राष्ट्र विरोधी तत्वों का प्रभुत्व रहा तो देश की सुरक्षा के लिये घोर संकट पैदा जोगा। सन १९६२ में चीनी आक्रमण के समय क. कम्युनिस्ट नेताने यह धमकी दी थी कि यदि कम्युनिस्टों को संयुक्त सुरक्षा मोर्चा में सम्मिलित नहीं किया गया तो वे सभी प्रतिरक्षा संस्थानों का कारोबार बन्द करवा देंगे। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनकी विचारों कीं दिशा क्या है? द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ काल में स्टालिन और हिटलर दोनो दोस्त थे। इसलिये फ्रान्स की प्रतिरक्षा संस्थानों में क्रियाशील कम्युनिस्ट यूनियनों ने अपने ही राष्ट्र की सुरक्षा की पीठ में छुरा भोंका (Sabotage किया) और हिटलर की सेना की सहायता की। जिनका श्रद्धाकेन्द्र देश के बाहर चाहे रूस में हो या चीन में--उनके हाथों में प्रतिरक्षा कर्मचारियोंकी बागडोर रहना—खतरे से खाली नहीं है।

## इन्टुक से निराश

कम्युनिस्टों के अतिरिक्त इस उद्योग में काम करने वाली दूसरी भी फेडरेशन है और हमें उससे बहुत आशायें थी किन्तु दुःख के साथ यह कहना पड़ता है कि उस फेडरेशन ने हमको निराश ही किया। वह

सरकारी श्रम संगठन के नाते ही काम कर रही है। इस कारण प्रति-रक्षा कर्मचारीयों को न्याय दिलाने मे वह असमर्थ रही है। इसी कारण कम्युनिष्टों के चंगुल से कर्मचारियों को मुक्त करने का कार्य भी वह नहीं कर सकती। यह बात नहीं कि कम्युनिस्टों ने कर्मचारियों की समस्याओं की सुलझन निकाली है। किन्तु वे कम से कम संघर्षशीलता का नाटक तो करते है। इस प्रकार दोनों फेडरेशन कर्मचारियों की उचित मांगे हासिल करने मे असमर्थ रही है।

दोनों फेडरेशन का आजका रवैय्या कर्मचारियों के हितों की रक्षा की दृष्टि से उपयुक्त नही है। हो सकता है कि प्रारम्भकाल में उन्होंने कुछ अच्छे ढंग से काम चलाया हो किन्तु एक बार सरकारी मान्यत प्राप्त होने के पश्चात दोनों की प्रवृत्तियों में अनुचित परिवर्तन आया है। दोनों के कार्य में सजगता, सतर्कता, दक्षता तथा संघर्ष–क्षमता का अभाव दिखाई देता है। उदासीनता बढ़ती जा रही है। प्रतिष्ठा प्राप्ति के फलस्वरूप दोनों में शिथिलता आ गई है।

## कर्मचारियों की समस्यायें

प्रतिरक्षा कर्मचारियों की अनन्त समस्यायें हैं। सबकी गिनती करना यहाँ सम्भव नही। हर एक संस्थान के हर एक श्रेणी की अलग अलग समस्यायें है। उनके अलावा सब कर्मचारियों की सर्वसाधारण समस्याये भी हैं। उदाहरण के रूप में यहा उल्लेख करना आवश्यक है–

क्या यह कहा जा सकता है कि Pay Commission की सभी सिफारिशों को पूरी तरह से क्रियान्वित किया गया है? आज दी जा रही वेतन श्रेणियों के पीछे कौन सा शास्त्रीय आधार है? क्या विभिन्न भत्तों (Allowanees) के पुनर्निर्धारण की आवश्यकता नहीं है। House Rent Allowance तथा City compensatory Allowanee के बारे में न्याय प्राप्त हो– इस हेतु सभी शहरों का पुनर्वर्गीकरण आवश्यक है

या नहीं ? क्या यह कहा जा सकता है कि सभी विभागों के लिए (Overtime Allowance) की सामान्य तथा निष्पक्ष व्यवस्था आज विद्यमान है ? क्या सभी कर्मचारियों के काम के घंटे ठीक ढंग से निश्चित हुए है ? और क्या सभीं चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों को साप्ताहिक तथा नियमित अवकाश प्राप्त होता है ? क्या यह सत्य नहीं है कि छुट्टियों के बारे में कोई सामान्य नीति नहीं, और विभिन्न विभागों तथा श्रेणियों के कर्मचारियों में इस विषय में विषमता तथा पक्षपात किया जा रहा है ? प्रमोशन की भी क्या कोई सामान्य तथा शास्त्रीय नीति है ? क्या यह सत्य नहीं है कि कई श्रेणियो के लिये प्रमोशन के द्वार बिल्कुल बन्द हैं और पक्षपात के कारण अन्ट्रेन्ड लोगों को ट्रेन्ड के वनिस्पत प्राथमिकता दी जाती है ? कितनी श्रेणियों का वेतन क्रम अवरूद्ध होता है ? पदावनति के बारे में भी क्या कोई सामान्य निति निर्धारित है ? क्या यह आवश्यक नहीं कि यह निती तय हो तथा उसके प्रकाश में विद्यमान पदावनतियों पर विचार किया जाय ? नियुक्ति तथा पदोन्नति के लिये आवश्यक सभी (Tests) के बारे में सर्वंकष विचार करने के लिये क्या किसी समिति की नियुक्ति उपयुक्त नही ? यह अभी तक स्वीकार क्यों नहीं किया गया किया किसी भी उच्चपद के लिये तब तक Direct recruitment नहीं की जायगी जब तक कि उसके लिये उपयुक्त व्यक्ति नीचे की श्रेणी में उपलब्ध हैं ? Probation की अवधि घटाने में क्या आपत्ति है ? योग्य व्यक्ति उपलब्ध होते हुए भी पदों को रिक्त रखने की पद्धति बन्द क्यों नही की जाती ? बडे पैमाने पर छटनी लाने वाली सभी योजनाओं को तुरन्त स्थगित क्यों नहीं किया जाता और इस सिद्धान्त को क्यों नहीं स्वीकार किया जाता कि किसी भी कर्मचारी को उसके काम से तब तक न हटाया जाय जब तक कि उसे उसी ग्रेड में दूसरी वैकल्पिक नोकरी नही दी जाती ? ट्रेड यूनियन कार्यकर्ता तथा अन्य कर्मचारियों के (Victimisation) के मामलों को देखने के लिए कौन सी मशीनरी आज विद्यमान है ? २५ वर्ष की सेवा अथवा ५५ वर्ष की आयु पर रिटायर करने अथवा न करने का अधिकार अफसरों को देने से पक्षपात बढेगा—यह बात आँखों से ओझल क्यों की जा रही है ? इस

तरह पक्षपात का अधिकार अफसरों को देने से ही कर्मचारियों को वर्षों तक टेंपररी के नाते रखने की प्रवृत्ति बढ़ गई और किसी को भी सेवा की सुरक्षा आज निश्चित नहीं-यह बात भूलने की चेष्टा क्यों हो रही है ? अभी भी ठीकेदारी पद्धति से काम क्यों लिया जाता है ? और जहा ठीका प्रथा हो वहां कर्मचारियों की सेवा शर्तों तथा वेतन श्रेणियों के लिये स्वय जिम्मेदारी वह क्यों नहीं लेती ? जिन विभागों में काम करने वाले कर्मचारियों पर मिलीटरी के नियम लागू किये जाते है-उनकी मिलीटरी कर्मचारियों की सुविधायें क्यों नहीं दी जाती ? आवश्यक जांच करते हुए उपयुक्त विभागों की शाखाओं तथा निपेशलियो-में Civilianisation क्यों नहीं किया जाता तथा २६%सैनिकीकरण को नीति को वापस क्यों नहीं लिया जाता ? प्रतिरक्षा विभाग से सम्बन्धित कोन से आनुषंगिक संस्थानों के कर्मचारियों को नियमित विभागीय कर्मचारी माना जाय-इस पर अब तक कभी सोच विचार भी हुआ है ? जिन कारखानों के काम का स्वरूप कर्मचारियों के स्वास्थ्य के लिये हानिप्रद है-उनके कर्मचारियों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिये कौन कौन सी सुविधाये सरकार ने दी है? क्या यह सत्य नहीं कि किसी भी विभाग या संस्थान में काम के बोझ का निर्धारण शास्त्रीय अधार पर नहीं किया गया है ? और जो ही निर्धारण पहले से है उससे अधिक बोझ कर्मचारियों पर डाला जा रहा है ? क्या यह कहा जा सकता है कि समान स्तर के कार्य करने वाले सभो कर्मचारियों की वेतन श्रेणियां आज समान है ? महगाई के आकडो के नुसार Pricerate में तथा पेंशनों को दरों मे वृद्धि क्यों नही की जाती ? क्या आज भविष्य निधि (Provident Fund) के ब्याज दर का पुनर्निर्धारण न्याय नही है ? Medical Reimbursement तथा Childrens' Education Allowance के बारे में आज की व्यवस्थी क्या सन्तोषजनक है ? कर्मचारियों की Contingency सेवा को अवकाश प्राप्ति के समय नियमित सेवा में क्यों नहीं जोड़ा जाता ? क्या स्थानान्तरण के समय शिक्षा का माध्यम तथा अन्य सम्बन्धित बातों को ध्यान में रखा जाता है। वर्ष में श्रएकबार सबको रेलवे फ्री पास क्यों नहीं दिया जाता ? क्या कोई सर्वंकष म कल्याण योजना का विकास तथा क्रियान्वयन किया जा रहा है जबकि

कर्मचारियों की आवास व्यवस्था जैसे प्रश्न को भी प्राथमिकता नहीं दी जा रही है ?

## दोनों फेडरेशनों में क्षमता का अभाव

ये सारे प्रश्न केवल उदाहरण के लिये प्रस्तुत किए गये है। वर्षों से ये प्रश्न चलते आ रहे हैं। दोनों फेडरेशन भी वर्षों से काम कर रही है किन्तु समस्यायें अब तक सुलझी नहीं। स्पष्ट है कि प्रश्नों का हल निकालने की क्षमता या तीव्र इच्छा का दोनों में अभाव है। विभिन्न श्रेणियों तथा संस्थानों की अपनी निजी विशेष समस्याओं को इन सर्व–साधारण प्रश्नों के साथ जोड दिया तो तय्यार होने वाला विवरण दोनों फेडरेशनों पर एक तरह से अविश्वास का प्रस्ताव ही सिद्ध होगा। इस उदासीनता की कोई सीमा नही, यहां तक कि इनके ही आदेश के अनुसार जुलाई, १९६० में हडताल पर गये हुए जिन कर्मचारियों को निकाला गया और अब तक जिन्हें काम पर वापस नहीं किया गया उनके लिए भी किसी प्रकार का संघर्ष करने की इनकी तैयारी नहीं है।

हमारा प्रमुख सवाल है कि इन समस्याओं की सुलझन के लिए दोनों फेडरेशनो ने अब तक कौन से सक्रिय तथा प्रभावी कदम उठाये ? हम परिणाम या फल के बारे में नहीं पूछ रहे है ? हम पूछ रहे है– दोनों की अब तक की कार्यवाही। कहा जाता है कि एक बार किसी सुलतान के काफिले लुट लिए गए और उनका प्रमुख संरक्षक इस समाचार को देने के लिये सुलतान के पास पहुंचा। प्रारंभ में ही उसने रोना धोना तथा बहाने बाजी शुरू की कि दुश्मन की तय्यारियां बहुत अधिक थीं। उस समय सुलतान ने कहा—

'ये न पूछा कि कैसे काफिले लूटे गये।

हमें रहजनी कि फिकर नहीं, तेरी रहवरी का सवाल है"

देश के प्रतिरक्षा कर्मचारी भी इस अधिवेशन के द्वारा दोनो फेडरेशनों से यही सवाल आज पूंछ रहे है।

## शक्ति से ही कार्यसिद्धि होगी

संयुक्त सलाहकार समिति (Joint Consultative Machinery) के उद्‌घाटन के पश्चात हमारे कुछ बन्धुओं ने हमें बताया कि अब वे J. C. M. में बैठते हैं और उसके द्वारा श्रमिकों की मांगें हासिल करेंगे। इसका मतलब तो यह निकलता है कि J. C. M. यानी ट्रेड यूनियन शक्ति का एक विकल्प। यह विचार गलत है। हमारी संगठन की शक्ति विद्यमान नही होगी तो J. C. M. के द्वारा भी हमें कुछ नही मिलेगा। वह नित्यसिद्धि होगी तो बगैर J. C. M. के भी हम हासिल कर सकेंगे। J. C. M. or No. J. C. M. शक्ति होगी तभी कार्य सिद्धि होगी। अत: इस भ्रांति से कर्मचारियों को मुक्त होना चाहिए।

इस सब परिस्थितियों की पृष्ठभूमि पर आप बन्धुओं ने निर्णया लिया है कि प्रतिरक्षा संस्थानो के कर्मरियों की सही (Genuing) ट्रेड यूनियनिज्म के आधार पर चलने वाली फेडरेशन का निर्माण हो।

## हमारा संकल्प

हमारा संकल्प है कि यह फेडरेशन प्रतिरक्षा कर्मचारियों की प्रतिरक्षा कर्मचारियों के लिये तथा प्रतिरक्षा कर्मचारियों द्वारा संच'लित रहेगी। यह श्रम क्षेत्र के अतिरिक्त बाह्य तत्वों से पूर्णरूपेण स्वतन्त्र, रहेनी—व्यक्तिगत नेतागिरी से स्वतंत्र, राजनैतिक दलों से स्वतंत्र सरकार से स्वतन्त्र, व्यवस्थापकों से स्वतन्त्र तथा वाद विशेषों से

स्वतन्त्र। राष्ट्रवादी होने के कारण यह फेडरेशन कर्तव्य और अधिकार दोनों पर समान आग्रह रखेगा। राष्ट्रहित के अन्तर्गत श्रमिक हित–इसका सिद्धान्त रहेगा। इसके सभी सदस्य राष्ट्र के प्रति आत्मसमर्पित होंगे किन्तु नोकरशाही के प्रति नहीं। नोकरशाही के प्रति उनकी नीति रहेगी–प्रतियोगी सहकारिता (Responsive cooperation) की। यही नीति अन्य फेडरेशनों के साथ भी रहेगी।

इस फेडरेशन के द्वारा आप एक महान ऐतिहासिक आवश्यकता की पूर्ति कर रहे है। आपके द्वारा राष्ट्र तथा प्रतिरक्षा कर्मचारियों की अति प्रशंसनीय सेवा हो रही है। आपके इस राष्ट्रीय अभियान में मैं आपके सुयश की कामना करता हुं, और भगवान से प्रार्थना करता हूं क यह इस फेडरेशन के माध्यम से अपनी योजना का क्रियान्वयन करे।

॥ जय भारत ॥

–––––

# सरकारी कर्मचारी राष्ट्रीय मंच

## (Govt. Employees National Forum)

नागपूर, दि. ११ तथा १२ जनवरी १९६९

यह एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सुअवसर है कि आज के दिन देशके सरकारी कर्मचारीयोंने इस राष्ट्रवादी मंच के निर्माण का दृढ संकल्प किया है। यह संकल्प राष्ट्र निर्माण कार्यके लिऐ एक क्रांति सिद्ध होगी। अब भविष्यमे विशेषकर सरकारी कर्मचारियोंके भलाई का निष्कपट-उत्कट एवं सचाई किन्तु यथार्थ संरक्षण किया जायगा।

यह प्रत्यक्षरूपसे स्पष्ट है कि यह मंच न तो मजदूर संगठन है और नही किसी प्रकारसे सेवा है। जैसा विदित है कि लगभग सभी शासकीय कार्यालयों एवं कल कारखानों मे पहले से ही अनेक मजदूर संगठन एवं सभाएँ कार्यरत है। अतएव इस मंच की स्थापना एवं निर्माण उन व्यावसायिक मजदूर संघोंसे भिन्न होने के नाते इन संघोकी स्पर्धासे अलिप्त है। तथा वर्तमान संगठनों एवं संघों को प्रोत्साहित करता, संघोंकी सदस्यता वृधी मे सहाय्यक होना एव उनकी कार्यक्षमता तथा कुशलता को वृद्धीगत करना यही इस मंच की प्रेरणा है। अर्थात यह मंच यथार्थ मे तथा सर्वतोपरी, वर्तमान संगठनो तथा संघों के लिये सहयोगी है अतएव यह अपेक्षा की प्रत्येक कर्मचारी इसकी प्रतिष्ठान का स्वागताही करेगा। अर्थात यह बात भी स्पष्ट है की इस मंच के सभी कार्यकर्ताओं के लिये बन्धनकारक सी है की उन्हे अत्याधिक कार्यशील रहना होगा।

## मंच की आवश्यकता !

अब स्वाभाविकही प्रश्न यह उठता है की इस मंच को निर्माण की आवश्यकता क्यों हुई जब कि पहलेही इस क्षेत्र मे कई अन्य संगठन एंव सभाएँ कार्यशील है।

किन्तु इसका उत्तर भी स्पष्ट है। आजकल सभी संगठन एकही उद्देश्यको लेकर कार्य करते है, मानों एकही मांग केलिये जैसे की कर्मचारियों के अधिकारो पर होनेवाला अतिक्रमण दूर हो। संभवत: यह परिस्थीतीजन्य हो, किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि वर्तमान संगठन कर्मचारियों को उनके अधिकारों के साथ कर्तव्योंकी विषय मे जागृती करने मे असमर्थ रहे है। यदि वे कर्मचारियों को उनकेअपने कर्तव्यो के प्रति निष्ठा पर बल देते है, तो संभवतः उन्हे मिली हुओ सस्ती लोकप्रियता से वंचित होना पडे। किंतु राश्ट्रहित की दृष्टिसे कर्तव्यों की पूर्ति बहुत महत्वपूर्ण विषय है। शासकीय कर्मचारी राष्ट्र के व्यवस्थापन के महन् मंगल भवन के आधार स्तंभ के समान है। अर्थात यदि वे अपने कर्तव्योंका कठोरता और तत्परता के साथ पालन नही करते हो, तो वह राष्ट्र के उन्नती मे बाधा सिद्ध होगी। उनके भ्रष्टाचारी जीवन से राष्ट्र को अपरिमीत हानि होगी। अर्थात कर्मचारियो के उज्वल चरित्र तथा परिश्रम पर ही राष्ट्र की उन्नति और सुरक्षा निर्भर है। यह स्पष्ट दिखाई देता है कि वर्तमान संगठन इस अत्यंत उपेक्षित किंतु महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व को स्वीकार करने मे सिद्ध होंगे यह असम्भव सा है। राष्ट्रीय मंच के स्थापकों के सम्मुख यही एक ज्वलंत प्रश्न रहा था।

साथही अधिकार सुरक्षा का आन्दोलन भी उचित पद्धती से चलाया नहीं जा रहा।

आज केन्द्रीय कर्मचारियो के संघटनोका एक भी महामंडल (Confideration) विद्यमान नही है तथा केन्द्रीय कर्मचारियों का वर्तमान महामंडल भी सभी केन्द्रीय कर्मचारी का प्रतिनिधित्व भी नही कर रहा हैं। और न की पचास प्रतिशत केन्द्रीय कर्मचारिओं का भी प्रतिनीधित्व नहीं कर रहा है यह वस्तुस्थीती है। केन्द्रीय कर्मचारियों के लिये एक सामान्य मंचका भी अभाव है। परिणाम स्वरुप वे सदाही असंघटित रहे है। जुलै १९६० को हडताल की संपूर्ण असफलता इस असंगठित स्थितीका परिचायक है। इस परिस्थीती मे यद्यपि एक महामंडल नही तो कम से कम एक सामान्य मंच निर्माण होना आवश्यक है। यही मंच का उद्देश्य है।

मंच की कार्यपद्धति अन्य संस्थाओ और संघटनाओ की तुलना मे मूलत: भिन्न होगी। शासकीय कर्मचारिओं के समस्याओपर विचार विमर्ष कर उन्हे संकट कालीन स्थितीं मे मार्गदर्शन करना इसी हेतु मंच का निर्माण हो रहा है। समस्त राष्ट्रवादी तथा कर्तव्यनिष्ठ कर्मचारिओं के संघटित शक्तिके अविष्कार का यह पवित्र स्थान है।

हर एक संघटन का अपना अपना अलग अस्तित्व रखते हुओ परस्पर सहयोग और परिपूरकता का महान प्रयास है। विभिन्न संघटनो के गतिशील कार्यकर्ताओं का यह महान शिक्षा केन्द्र है। अर्थात उनके अपने सघटनात्मक कर्ताओं को दूर कर उनके संघटित शक्ती को परिपूरित करना यह इस मंच के निर्माण मे निहित है। राष्ट्रविरोधी तत्वोसे प्रेरित अवछांनीय नेतृत्व से विभिन्न संस्थाओ और संघटनाके मुक्ति संग्राम का राष्ट्रवादीओं के लिये केन्द्रस्थान है। और एक व्यवसायिक संगठन होते हुओ भी मंच विभिन्न युनियनको शक्तिशाली और परिणाम कारी बनाने को इच्छुक है।

अंतने हमारी यह हार्दिक अभिलाषा है के शासन और उनके कर्मचारिओं के बीच सदाके लिये और हार्दिक सौदार्य पूर्ण सूसंगती बनी रहे हमारी दृष्टिमे प्रधान मंत्री भी एक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारिओं के भाँति जनसेवकही है। दोनोही जनता के सेवकही है न की जनताके शासक है। यदि मंत्रीगण और शासकीय अधिकारी इन विचारों से बद्ध परिकर है तो संघर्ष भी असम्भव है। अर्थात इसके अभाव मे संघर्ष अपरिहार्य है। अत: आशा है कि यह मंच कर्मचारिओं को संघर्ष के समय तथा स्थायी निर्माण कार्य मे सफलतापूर्वक मार्गदर्शन करने शासकीय कर्मचारीओं को शक्तिशाली बनाने मे यशस्वीता के साथ सर्वदा मार्गदर्शन करेगा।

॥ जय भारत ॥

# NATIONALIST CENTRAL GOVT. EMPLOYEES' FORUM

## What necessitated formation of forum ?

Dear friends,

It is an occasion of historical importance as today the Govt. employees of the capital have resolved to form a nationalistic forum. As a nation building activity, this decision will prove revolutionary. In particular, henceforth, the welfare of the Govt. employees will be keenly and sincerely looked after.

It is obvious, that the Forum is not a trade union or a service association. In almost all the Govt departments and industries various unions and associations are already functioning. The formation of the forum, therefore is not on the lines of trade unionism and hence it is not in competition with them. The motive behind the creation of the Forum is simply to invigorate the existing unions and associations, to increase their membership to the maximum and to further enhance their effectivity and efficiency. The Forum, in every sense and aspect, is complimentary to the existing unions and associations and it is therefore expected that every body will welcome its inauguration. It is also imperative that the members and activities of the Forum should be more active n their respective unious.

Now, what necessitated the formation of the Forum, when already so many unions and associations are in the field ?

The answer to this is clear. Nowa days the association and unions are being run with only one objective and that is just to demand that there should be no **encroachment** on the rights of the employees. This may be the result of the circumstances, but it is a glaring and naked truth that these associations today are not in a position to lay equal **stress** upon duties as well as rights. If the aspect of duties is stressed probably these associations will be deprived of the cheap popularity. But in the national interest this aspect of fulfilling one's duty is very important. Govt. employees are like the foundation stones of the nation's temple of administration. If they do not perform their duties efficiently, the prosperity of the nation will suffer. Corruption on their part will put the nation to an irrepairable loss. In their integrity and character lies the guarntee of the guarantee of the prosperity and security of the country. Today it appears impossible that these associations will take up the responsibility of such an important task neglected badly so far ? This was the burning question before the organisers of the Forum.

Moreover, the struggle for the rights is also not being conducted properly.

There is, today, no confederation of all the associations of the Central Govt. employees. The present Confederation of the Central Govt. Employees does not represent all the Central Govt. employees, in fact not even fifty percent of them. There is no common platform for all the Govt. employees. Consequently, Govt. employees have always been disorganised, The fiasco of the general strike of July. 1960 amply illustrates the absence of well knit organisation. Under these cricumstances, it not a comperhensive confederation, at least a common platform should be brought into

existence. Here the propriety of the common platform or a forum of nontrade union organisations.

The method of working of the forum will differ in its essence from that of the existing trade unions and associations. This forum is being created to deliberate over the problems of the Govt. employees and to guide them in their hour of need. It is a rallying ground for the nationalist and dutiful employees of different departments. It is a complimentary effort to enlist support while maintaining separate entity of each and every association. It is a training ground for the activities in defferent organisations. It is meant to remove the lacuna in their organisational set-up and supplement their strenght. It is a base of operation for the nationalist employees to liberate the various unions and associations from the undesirable leadership of irresponsible and anit-national elements. Without becomming a trade union itself, the Forum seeks to make different unions and associations healthy and effective.

It is our sincere desire that there should be constant and sweet harmony between the Govt. and its employees. It is our clear view that even the Prime-Minister is as much a public servant as fourth class Govt. employee. Both of them are the servants of the people and not their self appointed masters. No conflict will even arise if the ministers and the officers are wedded to this way of thinking. But if they forget this fact the conflict is inevitable. It is hoped that the Forum will continue to strengthen and guide the Govt. employees successfully both in their hour of conflict as well as collaboration.

Inaugural Speech in the Conference of Nationalist Central Govt. Employee's Forum Delhi held on the 19th March 67,

# "OUR ROAD TRANSPORT"

Date 1-5-1950

Formerly this earth was very vast. But Man tightened it by the chains of roads and railways. Then the world began to shrink in size. Distances could nolonger remain 'distant'. Separated lovers could meet each other within a few hours which, previously, had been a matter of days. Raw material in one part of the globe could swiftly reach its other end, to be turned there into finished products and distributed subsequently to peoples of different lands, within a period which would have been hardly sufficient in olden days to bring to their homes the articles manufactured out of their own local raw material. What would have appeared as a miracle to our forefathers was actually materialised. The magician who brought about this miracle was described by different persons in different terms. The most comprehensive one, out of them all, is 'TRANSPORT'

The Industrial Revolution in the West changed the nature and the methods of transport. The individual cartman and the boat-man had no place in the new scheme of things. The small country-craft lost its importance. The individual wage earners of the old type of transport had no vast resources to build huge ships or to lay railway lines. Community-wealth in form of shares had to come forward to supply the necessary capital to start and support the new transport. Gradually the money and its power gained superiority and began to change the face of the world, wonderstruck at the might of this new system.

Indians, too. were not a little surprised when railway was first introduced in this land before about a hundred years. It promised them great comfort and convenience, though, in fact, during the British regime, railways were run, not so much for the good of, as for the goods from

differeut parts of this country. Frankly, to protect and promote the British Commercial and military interests was the main object of this new development. Public convenience became merely a side-issue. Nevertheless, it was to their credit that they brought places of commercial importance nearer in all respects except in number of miles.

We were to receive further surprise. The Indian road with which we were familiar for not less than 5,000 years, began to transform itself and to carry speedy engined-vehicles upon its back. India had her own reasons for being specially interested in this latter form of transport. Highly industrialised countries, where population is concentrated in urban areas can depend more upon railways. But in India, where vast majority of population is scattered all over in large number of villages, transport by road must be developed on equal footing. For railways cannot afford to reach these thinly-populated rural areas. In fact, road transport can contact rural India more effectively than railways.

The reasons why State should give so much consideration to the road-problem are obvious. From military point of view the importance of the road transport can hardly be overstressed. No defence system of any country can be perfect without efficient organisation of this type of transport. We all know how the Nazis had devoted considerable portion of their time, energy and finances to its organisation. Other States from the west are also showing equal alertness.

The commercial utility of well-organised transport system was recently emphasised in a discussion on food problm

in the last session of the Union Parliament. Lack of adequate transport arrangements was stated to be one of the important causes of our inability to meet the food crisis.

To grow more food is not enough. If arrangements are not made to take to markets what is abundantly grown in ineccessible villages, what is produced there will be allowed to perish, while people in towns and clties starve to death.

The Problem of internal peace and order is, in more than one way, allied with that of national defence. How often we learn the news of communist atrocities in Krishan and Nalgonda districts of Andhra and the tea-plantatios areas of Assam !

How is it that in a civilised country like that of our own, bands of goondas can successfully resist the armed forces of the established Government ? The credit--or discredit, for this unusual cricumstance, goes more to the inadequacy of our road system in the concerned areas than to the strength of the local Communists. Pressure of military might can be brought to bear upon the anti-social elements tn the hinterland only through the extension of the means of communications to such parts. The lesson of the divided Punjab is also equally instructive.

All these factors must have received serious consideration from the Chief Engineers who met in the Road Conference at Nagpur in the third week of December 1943, and proposed to increase the roadmileage to 400.000 miles. Their plan envisaged the construction of over 18,000 miles of National Highways, 72,000 miles of State Highways, 60,000

miles of Major District Roads, 100,000 miles of Minor District Roads, and 150,000 miles of village roads. (Post-independence target figure has been 311,000 miles.)

That the Central and the State Governments did not, or could not, receive this proposal with the seriousness it deserved is a matter of deep regret. The graveness of this error of omission was brought home to our minds. First, by the deteriorating food situation, and, next, by the outbreak of war near our frontier. Railways, covering only 33,984 miles of this of this vast sub-continent, could not be expected to bear the whole brunt of our war-effort on the Food Front. Devlopment of roads and waterways as "equal partners" to railways was not paid attention to. Otherwise, diversion of the movement of food grains, coal, and petrol from railways' to roads and inland waterways' would have facilitated their poper and speedy distribution to the needy areas.' So far as the next point is concerned, those who believe that in the eventuality of war, we will be able to mobilise our forces with the necessary speed with the help of the railways and our poorly maintained roads extending over nearly 240,000 miles, are really in a fools' paradise.

While construction of new roads cannot be neglected or delayed without incurring great risk to the safety of our country, the imperfect and improper use of the already existing ones cannot be allowed to continue without considerable loss to our national econamy and public convenience.

This calls for careful planning and organisation of the passenger and goods transport.

To be brief, to organise transport, in the first plase, the district or the area proposed to be serviced should be

carefully surveyed; the condition of roads therein and the volume of traffic on different routes at different times studied, the time-interval between vehicles determined; the stops and the agents' offices located; places for the headquarters and the termini chosen; the schedules and time-tables prepared; the type of vehicles decided upon; arrangements for efficient driving and conducting, inspection and supervision, booking of tickets, reporting of accidents, and handling of complaints from the public, perfected; conductors, drivers and supervisory staff selected; facilities for their further training provided for; and an official capable of directing all these activities appointed. These functions are the integral parts of the actual operation of any road transport service, and are managed by its Traffic Department.

Secondly, vehicle being the very soul of any road transport system, the Traffic Department, for its efficient working has to depend upon mechanics, fitters, foremen and others who constitute its Engineering Department, consisting of (i) Garages and (ii) Workshops.

Like any other concern, the transport undertaking also ought to set up its Commercial Department to look after all its business activities,such as, accounts, insurance of vehicles, labour welfare, legal proceedings, correspondence, store-keeping, purchase of spare parts, supply of uniforms etc.

Equally important is the task of selecting a person having insight in the individual working of all the three departments and possessing capacity to co-ordinate their separate efforts with the complete picture of the system in view. Such administrator of the entire undertaking, assisted by competent heads of the three departments and the skilled personnel

under them, is sure to make undertaking a great success by his appropriate guidance and direction.

To what goal are to be directed all these varied activities of the organised transport ? With what end in view is to be conducted the individual as well as coordinated working of different departments ? What motive is to inspire movement of the Fleet of vehicles ? Merely profits ? No; though, in a way, they may be regarded as an index of the efficiency of management in the long run. Not the financial gain to the concern, but the maximum satisfaction to the travelling public should be the real objective of any transportt undertaking. Transit of men and material from place to place can be swift yet safe, and comfortable and convenient yet economical in the area serviced by an ideal transpor system. Facility for such transit is the criterion of its success

Question has been raised recently in our country whether this purpose can be served best by giving full scope to the private operators. The proposed alternative is, of course, the nationalisation of road-transport. This Subject has attracted much public attention particularly after the delegates to the eighth session of the All-India Motor Union Congress were informed by Shri Gopalswami Ayyangar, Minister for Transport and Railways, that the Govt. was determined to nationlise this industry. On this question it is easy to understand the reaction of the private operators who took the risk of sinking their money upon an unknown industry with uncertain future, before a quarter of a century when there were no vehicles on the roads. To them goes the credit for developing and organising our motor transport system. They are naturally of the opinion that the proposed nationalisation is immature, ill-digested, ill-conceived, and

overenthusiastic. They are at a loss to understand why our Government should insist upon nationalisation of this comparatively young industry, when many other key and heavy industries are still left under private control. Can it be said with any amount of certainty that the nationalisation in this case shall bear the expected fruits ? There is no gurantee that the State-owned motor transport will run more efficiently than the Railway Department. In the first place, it has been generally observed that under private ownership, management is more economical; while public management is usually extravagant. Again, in future, we expect the road transport to be quicker, cheaper, and more adjustible with local and the seasonal needs of the public in the serviced area. Initiative, direct control and personal element, which are characteristic of private transport, and which, again, are the pre-requisites of progressive motor transport, are conspicuously absent in the nationalised industry. Hence the failure of nationalised road transport in Germany and Northern Ireland. Under private enterprise, relations between the bus-owner and the driver or conductor are more personal and, therefore, humane. Thus there is more scope for amicable settlement of industrial disputes. Chances of province-wide strike become naturally less. Vehicles are more carefully attended to, which enhances their serviceability. Individual operator is in touch with the local conditions, and can correctly adjust the frequency of trips to the changing needs of the locality under his service. He is completely dependant upon the good-will of the public. Therefore, he is always inclined to be more particular about their needs and comforts. That is not the case with transport worker under nationalisacion. Under which system, these operators ask, there is more possibility of cordiality between the trans port service and the passengers? Moreover, we cannot afford

to ignore our tradition which stands for decentralised and domocratic economic organisation. Gandhism always prefers distribution of economic control. Should we allow the small man to be eliminated and replaced by gigantic machinery ? Again, even if we take it for graned that the idea or pooling up all national resources through the scheme of nationalisation will be welcome to all nationalists, is it not our duty to determine wisely as to when and how this scheme should be launched. Over-centralisation eannot be beneficial at the present stage of this industry. and to enforce if by legislation instead of by negotiation is the wrong way ot achieving it. Under such circumstances, is it not improper on the part of our Govt. to deprive thousands of motor operators of their only means of livelihood ? These' in brief, are the arguments against nationalisation of this publc utility service. And the All India Motor Unions Congress, like the Road Haulage Association of England, has been doing everything possible to safeguard the interests of the operators and to make the best of the bad bargain.

Advocates of nationalisation do recognise the importance of the role of these pioneers of motor transport in India. But they contend that this industry has now reached a stage where further progress is impossible without nationalisation, as it involves heavy expenditure on mechanical development with a view to achieve security and convenience of the passengers. Individual operators plying the common roads cannot afford to create numerous, well-equipped road stations serving the road-side villages. So far, reaching the destination has not been guaranteed under all circumstances, as there is no system of communication provided for transmitting engine-failures, or development of any defect in bus-running. Improvement on the present state of roads

which become risky especially during the rains, is beyond the means of private operators. Improvement in vehicles and their equipment with modern costly inventions is also equally difficult for them. It has not been possible for them to offer long-distance transport on provincial scales, due to their inability to invest the nacessary capital. They have not yet been able to secure proper adjustmeut of time-tables of different short-distance-services so as to facilitate convenient long-distance-journey covering different routes, on one single ticket.

Secondly, no province is able financially today to develop all its roads in to the firstclass motorable ones. Most of our river-bridges are merely open-season-bridges, useless during rainy season. All our roads and bridges should be pliable during all seasons. Such development is not possible merely from the revenues collected through taxation on transport. The profits out of road-transport should go to those who maintain and develop roads. The business of transport should not be in the hands of private users while the State has to develop and create more roads, If the State runs this busirness and secures all profits accruing from it, it will be in a position to invest these profits towards road development.

For the growth of our young democracy all sources and forces of disorder are required to be vigilantly watched. Under private road transport, unscrupulous persons and disturbing elements usually infiltrate in transport organisations, and endanger the safety of the state. They are apt to use the workers' organisations for dislocating the transport administration, in which case it would be impossible for the State to maintain law and order.

In reply to arguments against nationalisation, its supporters contend that the anticipated defects do not arise out of any inherent weakness in the system of nationalisation. They only indicate lack of national spirit,–lack of any sense of national responsibility. System in itself deservese no blame.

Thus there are diameterically opposite views prevailing on the matter; and it is not easy to strike a golden mean between the two extremes. Compromise has, however, been suggested by Shri Ananthashayanam Ayyangar in course of his speech before the eighth session of the A. I, M. U. C. The State Governments, he said, should confine themselves to highway and leave the bye-ways to private agencies. Shri Deshbandhu Gupta proposed introduction of Motor Transport Cooperative Societies under the State-supervision. The necessity of mitigating the disabilities of the owners and operators arising out of nationalisation was emphasised in this session. **Compensation to the displaced operators** and absorption of their workers and drivers were the two points which, according to this session of the A. I. M. U. C, deserved special consideration before introducing any new scheme.

The Road Transport Corporations Bill which embodies the principle of nationlisation is now before the Parliament At this stage it is necessary to sound a note of warning. Idea of nationalisation is good, and should be acceptable to all. But it should be nationalisation in spirit, not merely in name. What we will actually achieve should be genuine nationalisation, and not its mockery. Will it be possible for us to convince the general public that it is 'their' transport, being run for 'their' benefit ? Will we be able to make ordi-

nary transport worker feel that, by running transport he is serving his nation and carrying out a patriot's duty towards his country ? Will the Directors and General Managers under the new system realise that they are as much servants of the public as the drivers and conductors, and, as such, are on equal footing with latter ? Will the State consider this nationalised transport as its duty, rather than its right,–an obligation upon itself, rather than an asset to its treasury ? These are the questions that must be satisfact–orily replied before launching the scheme for nationalisation of road–transport. Otherwise, if we proceed with the scheme in indecent haste, what we will be bringing about will be neither nationalisation, nor rationalisation, nor commerciali-sation, but only state-monopolization of the most inefficient and uneconomical type. This is not to condemn or criticise the principle of nationalisation. With best intentions, and most-innocently, let us not encourage ignoble practice of noble principle. We have already established our reputation for the knack of carving out a monkey in an attempt to pre-pare the image of 'Vinayak. In nationalising road transpor industry, we need not be faithful to that tradition.

After all, nationalisation or no nationaiisation, the highest comfort and convenience of the travelling public is the real criterion of successful road-transport; and a Common man after Pope's fashion, is bound to say, That is best which serves best. For form of transport, let the fools contest.

# TEXTILE ASSOCIATION
## (ALL INDIA CONFERENCE)

Shanmuganand Hall
Bombay, 3rd March 1969

oooooooo

The Cotton Spinning and weaving has been one of the most ancient industries of India- According to scholars, Gritsamada, a sage referred to in Rigveda, has been the pioneer of this art, the first spinner and weaver of the world. Even during recent historical period, India has been the leader in this respect and the prestige enjoyed by our cotton textiles in the western markets is a recorded fact.

In modern times, the cotton textile industry, pioneered by Shri. Cowasjee Dawar who organised the first cotton mill company in Bombay in the year 1854, is the mother of Indian industrialisation. It is the largest single enterprise in our organised sector providing the second basic need of our population. In private sector, it is the biggest employer in the country emploing 9. 26 lakh workers, i. e. 20 percent of all factory labour totalling 4. 6 millions. It has a weightage of 21 . 18 percent in the revised index of industrial production. It has assets worth more than Rs. 900 crores and a paid up capital of Rs. 165 crores. In 1964, it contributed 15.40 percent of the total gross value of . our industrial manufactures of the value added by manufacture amounting to Rs. 1,510 crores by all industries, the share of this industry was Rs. 264 crores, i. e. 17.48 per cent. There are 635 mills in the country with more than 17 million spindles and more than 2 lakh looms. Their turnover in 1967 was about Rs. 520 crores of cloth and Rs. 260 crores of yarn. India occupies the third

place among the cotton cloth producing countries in the world next only to the United States and China. It is second in the world cotton textiles trade. All types of almost up-to-date statistics concerning this industry are readily available to-day,—thanks to the various non-official as well as official agencies engaged in this work. They prove beyond doubt that this industry occupies a piovotal place in our national economy and that, as has been optly said ' if the cotton text ile industry sneezed, the rest of the economy would catch cold, if it were buoyant, the rest would boom. '

It is but natural that all nationalists, including those who are not even remotely connected with this industry except as consumers, should be extremely anxious about and vitally interested in the future of this key industry. Even some of the Afro-Asian countries are equally anxious and interested, since they hope to receive from this Indian industry entrepreneuer,managerial cadre and technical know how for the benefit of their industries.

The Indian trade union movement is particularly indebted to the cotton textiles industry. Cotton textile workers have been the pioneers of trade union organisation and agitation in India. Our trade unionists remember with a sense of gratitude, shri. B.P. Wadia's efforts in the B. R.C. Mills, Madras. In this year of Gandhi centenary it would be appropriate to recall that it was in this industry that Revered Mahatmaji had an opportunity of celebrating his concept of 'Trusteeship,' hough he had received it earlier through the study of the ' Gita 'and Snells' ' Principles of Equity'. This industry furnished him the first forum to propagate his characteristic views on ' ethics and economics '. Through this industry Mahatmaji declared for the first time that industries " ought only to be working under the most attractive and ideal conditions, not for profit, but for the benefit of humanity, love

taking the place of greed as the motive.

On behalf of textile workers, I can claim without hesitation that they have, as a group, a sort of attachment to their industry. Most of them are not ' proletariate ' in the technical sense of the term; they have moorings in the rural areas. They are enlightened and patriotic. During national emergencies, they have been the first to offer every type of sacrifice at the altar of the Motherland. They are prepared to suffer and sacrifice, if they are convinced that the same will lead to the promotion of the broader, nonsectional national interests.

Their demands and grievances are well known. To be brief, they demand the needs-based-minimum wage to be determined in the light of the working class family budget, inquiry, fixation of different pay-scales on the basis of the results of the scientific job evaluation;automatic linking of their entire pay-packet with the cost of living index; incorporation of the definition of 'bonus' as 'deferred' or supplimentary wage in the Payment of Bonus Act, proper regulation of workload,a more rational scheme of holidays and different leaves; an integrated scheme of social security; adequate industrial housing; appropriate fringe benefits and labour welfare measures; proper implementation of laws and awards; acceptance of the golden rules of 'no retrenchment without alternate employment', change in the character and composition of wage boards so as to convert them into a tripulite forum for collective bargaining; and, finally, a drastic change in the pattern of industrial ownership with a view to make them equal copartners.

While workers are thus putting forth their legitimate demands, they are not oblivious of the fact that their prosperity is necessarily linked with that of the entire industry; that workers cannot stand if the industry falls, and that the

adverniturism of killing the hen that lays golden eggs is wrong, both as stratagy as well as as principle. Consequently, they are prepared to sacrifice for the sustenance of the industry provided they are convinced that such a gesture on their part will benefit the industry as such,and not a few individuals. For example,they have opposed suspension of natural labour aws under any scheme; but they have simultaneously taken I intiiative,at their expense,in restarting the Edward Mills.They were criticised for their opposition to the schemes of indiscriminate rationalisation. But had they not declared that they would welcome the move if three conditions are fulfilled,i.e. (1) that there should be no retrenchment without alternate employment, (2) that the workers' representatives should have a right to inspect and ensure that work-load does not inerease; and (3) that the workers' due share in the resultant additional profits must be specified at the outset. Who can allege that these pre-conditions were irrational?

We can understand the agitation of the employers on the point of modernisation. Almost upto the 'sixties' restrictions were imposed upon modernisation of palnt and machinery, continuance of our technical backwardness became thus inevitable. By the time these restrictions were partially relaxed, the cost of capital goods abroad had gone up and our foreign exchange position deteriorated and the domestic textile machinery industry was in its infancy.

I will not lay great stress upon the fact that the employers did not, until recently, utilise profits for modernisation of this industry and on the contrary, financed other industries out of the profit of this industry. I distinguish industrialists from businessman. An industrialist is completely identified with hsi industry, a businessman is not. For an industrialist the progress and prosperity of this inbustry is an end in itself; for a businessman, it is only a means, the end being pure profiteering. But without entering in to this discussion, I propose to state our point of view on this matter.

The employers have made it clear that the resources required for modernisation and rehabilitation are so large that the task cannot be undertaken without substantial assistance from Government. They seek tax concessions, reduction in the excise duty, export promotion facilities and relaxation of conditions and control in the money and credit market. Can credit market conditions be so altered as to enable them to rise huge amounts of loans on easier terms? Can the Govt. facilitate the purchase or sale of old mills on more favourable terms? Can the employers have larger depreciation on capital investment? will it be possible to utilise the National Textile Corporation, Industrial Development Bank, Life Insurance Corporation and the Provident Fund for this purpose? Is it, again practicable to raise a special capital fund from workers contributions? These, among others, are some of the points raised by the employers.

Nobody on behalf of workers would insist that the mills must be run with out-moded equipments. It is true that a good proportion of plant and machinery, as well as of buildings, is old, worn out and out-moded and they require to be replaced by modern equipment and buildings. But whether it is advisable to go whole hog with the programme of modernisation is a controversial point.

The methods that yield results in case of reorganisation of industry in countries suffering from shortage of labour, would necessarily be of doubtful validity in a country having huge surplus man-power. Introduction of labour-saving-devices; opration of automatics; change in the wage-system, from a uniform piece-rate to one which relates earnings more closely to productivity and which permits the introduction of rational mothods of utilising labour, i. e. incentive bonus schemes; the application of Time and Motion studies and work-lode Analysis,- all these measures

implemented with the workers' cooperation, might have helped Great Britain in increasing out-put per man-hour, en-hancing wage-rates and reducing labour-cost per pound of yarn. But in India we cannot afford to imitate indiscriminately this example of a westean country. Apart from the problem of raising adequate funds for modernisation, we are confronted with a still bigger problem of consequent retrenchment and unemployment. In Maharashtra alone, as worked out by shri. V.G. Mhetras, about 60,000 textile workers would have to be provided for, during the course of a ten year programme of Modernisation of the States Cotton Mill Industry. And these estimates do not include the figures of 'Badli' labour pool, which constitutes quite a sizable number in the industry. The factor of the 'high-age group' nearing the natural retirement age is not going to help substantially the problem of unemployment. A Macro-Model for modernisation of the Bombay's cotton mill inbustry, as constructed by the experts, does not lead us to any other conculsion. It must be admitted by all concerned that today, under the present set-up, there is no approprite arrangement for absorption of such a 'surplus', deployed, labour force in the non-cotton-textile industries of the urban areas or even in the cotton textile units of the rural areas. It will not be practicable to compel, through Employment Exchange Services, the various industries in big cities to absorb this deployed labour force on the first priority basis. Even if there is some scheme to start new textile unites in the cotton growing rural areas, these may not be in a position to accomodate retrenched workers from cities, ignoring the natural claims of the local labour.

Apart from difficult problems of the availability of capital requirements and new managerial skills and the introduction of new methods of production necessitating re-development of men and machinery and consequently organisation of new training programmes, the problem of the absorption

of surplus labour is of the highest imqortance. If no satisfactory solution is found for it, it would be impossible to secure workers' willing cooperation, in absence of which no programme of modernisation can attain any measure or degree of success. Again, the emphasis on the type of productivity in India must necessarily be different from that in the industrially advanced countries. It is true that, as compared to the United States Cotton Textiles Industry, ours employs six times the number of workers to do the same job in the spinning sector and three times the number in the weaving sector. But socio-economic conditions in two countries are entirely different. In India human labour constitutes an important, integral part of our national capital. And, again, capital being scarce here, the stress should be laid here on the productivity per unit of capital even as labour being comparatively scarce there, the stress is laid there on the productivity per unit of labour. They are more partcular about per unit labour cost, we have to be equally alert about per unit capital cost. I am putting forth this view point not merely as a representative of workers but also as a patriot interested keenly in the health of this vital industry. But I am sorry to observe that our suggestions so far have been dismissed lightly as a sectional point of view. I do not claim that we can propose any panacea for the various maladies of the indnstry. Probably, no such panacea is conceivable. I do not believe in the efficacy of cheap slogans propogating one ism or the other. Neither workers, nor employers, nor even the bureaucrats are all angels as a group. We are all ' of the earth, earthy '. But, still, on practical level, we have been voicing the reactions of enlightened textile workers to dfferent situations and measurs, from time to time. And I can modestly, yet confidently, state that had our suggestions been considered with the seriousness they deserved, they would have helped at least minimising the intensity of the present crisis.

For example, when the National Textiles Corporation was being discussed in Parliament, I had said on behalf of the workers that prevention was better than cure, and that from that point of view, there should a system of continuous efficiency audit for different industrial establishments. In case of continuous effiiciency audit it becomes possible for the Government to issue a warning before hand that the capital is being managed in an improper manner. The Government can suggest ways and means of proper deployment of capital and it becomes possible for the Goverument to locate the responsibility for the closnre or failure of the industrial concern. Having located the responsibility, the Govt. should be in a position to impose penalty on the defaulting party. In the number of cases it has been found that it is not the natural causes or causes beyond the control of the employers, but the rivalry between the employers or mismanagement on their part that is responsible for the closures. It can be discussed and decided whether ' mismanagement ' should be treated as a ' cognisable ' offence. We have further suggested that workers should have a right to scrutinise the he balance-sheet. Unless they are authorised to go behind the balance-sheet, they would not be inspired to contribute their might to the industry. This will serve as a sort of deterrent and, what is more important, they will consequently have that sense of participation or copartnership which constitutes the very essence of psychological revolution. We also suggested that the term ' Industrial dispute ' should be redefined and 'Industrail matter' should include, among other hings, the development of capital also. The workers should have a right to suggest or recommend in which particular way the available capital should be deployed.

From other forums, we have urged that the credit agencies of the country should have their own financial couns-

elling or consultation cells, and that they should examine, guide and supervise the schemes for proper utilisation of the credit advanced. We have pleaded for a closer cooperation between research institutes, such as, ATIRA, BTRA, or SITRA and the cotton textile industry We have also suggested that there should be closer coordination between Commerce and Finance Ministries on the one hand and Planning Commission on the other. A constant and more meaningful dialogue between Government and the Industry on all issues involed has also been one of our pleas.

That all these suggestions have not been treated wit adequate seriousness, is quite obvious. I hope, that in the interest of the industry and the nation. the concerned parties will, atleast in future, do justice to the merit of our new proposals

Textile industry is a problem industry all over the world. The factors responsible for the present crisis in the Indian Cotton Textile Industry are well known. A challenge posed at home by the growing popularity of man made fibre, the policy of self-sufficiency and protective tariff adopted by different countries,and competition with the textile goods manufactured by more advanced countries,—these have been some of the recent developments. According to employers some of the other main factors are: (a) Low production of cotton in there successive years after 1963–64. inspite of the fact that of all the major exporters of cotton textiles, India has the privilege of home-grown cotton; and sharp decline in production of foodgrains and several other agricultural crops in two successive years, i.e. 1965–66 and 1966-67; (b) Arbitrary abolition of the Indian Central Cotton Committee; (c) Increase in cotton prices on accouut of low production of cotton and rapid growth inspinning capacity (d) Mixture of

inferior cottons with superior cottons, (e) Devaluation inflating the cost of imported as well as indigeneous cotton;(f) Exhorbitant increase in Excise Duty on cloth aud yarn, (g) Price-control, Power shortage and power costs, (i)Severe cost inflation in the past five years, (f) The excessive burden of custom, excise duties, sales tax, octroi, town duties, etc; on materials consumed by this industry, (k) The licencing system (l) Wide differences in the regionwise costlevels on account of transport of raw-materials and finished goods, availability of stores, spares etc, and (m) Heavy absenteeism, low productivity and ' higher wages' of workers. They allegethat the cumulative effect of all these has been low porfits an increase in the number of the, scrap the 'sick' and the ' anamic ' units, more closures, and heavy unemployment.

They, probably, would not like to concede that mismanagement ' has also been a contributory factor. Reduction of costs through reduction of wastes;saving in interest charges by inventory controls, good maintanance, maintanance of healthy industrial relations, - all such results can certainly be obtained through efficient management. They admit that the paid-up capital of textile companies rose by 18 percent, while that of 1,077 companies of other industries ( covered by the Reserve Bank statistics ) increased by 23.7 per cent and that at the rate of 23.7 percent their capital would have risen by another 6 crores. They have also said that the dividend distribution in the cotton textiles was, during the period 1960-61 to 1965-66, 69 percent of nett profits after tax' while in the industries referred to above, it was, during the same period, 61.5 per cent, and that, had the dividend distribution in cotton textiles been 61.5 percent. as in other ndustries, this industry would have saved Rs. 10 crores' But both these amounts they consider as insignificant, in

view of the indebtedness of the industry to the tune of Rs. 303 crores. while many of the contributory factors, stated by them, constitute an integral part of the broader official policy and planning, it is certain that the ' holier-than-thou' attitude of the employers has created, rightly or wrongly, a general impression that they want to thrive at the cost of other interests, such as, consumers, workers, cotton growers share-holders, managing agents, and various Governments and local authorities. Not that all their arguments are comletely baseless, though I do not feel that they are more sinned against than sinning. But their attitude has done a great disservice to their own cause as well as to the industry. The earlier this impression is removed, the better for the industry, the industrialists and the nation.

Regarding vacillation and indecision of the Govt. of India, less said the better. I deliberately refrain from passing any comments on the Govt. of India's economic policy in general and textile policy in particular, lest I should be accused of exploiting this occasion and forum for airing political views. Therefore, without conducting any post mortem of the bast performance, I will straightway proceed to the present condition of the industry.

What are the expectations of the industry from the varsous Governments? Taking over of the 'scrap' and the 'sick' mills? The Cotton Textile Committee (1968) has gone through this problem. It is the considered opinion of the Committee that a survey of the technical and financial working of the marginal mills must be undertaken at a much earlier stage than is done under the Industries (Development and Regulation) Act, at present, if it is to serve as a basis for timely action. " It is not in the long term interest of the State to invest public moneys to some

how prop up a mill which, from the technical and financial points of view, deserves to be scrapped. The mills to be taken over by the Government should be technically viable. Even in the case of a mill to be run under the Bombay Relief Undertaking (Special Provision) Act, 1958, certain minimum conditions regarding the technical and financial state of the mill should be satisfied before it is taken over by the Government. From the Report of the Cotton Textile Committee, it becomes evident that neither the Government nor the National Textile Corporation nor its various State Units can render any effective service to the 'scrap' mills without affecting the public interest.

Moreover, under any arrangement the workers would not tolerate suspension of labour laws, withholding of their dues, wage cut or any other adverse change in their service conditions. Thus, the official takeover is not advisable in case of 'scrap' mills. In case of the 'sick' and the 'anaemic' mills, the Govt. will have to provide for technical and financial assistance, and the affected workers are claiming that if similar assistance is furnished to them they would undertake running of their mills, in which case they would not mind working overtime without O. T. allowance and reducing their pay-packet as a temporary economy measure. This experiment in the direction of 'Labourisation' is worth the candle, and I am confident that given an opportunity, the workers can rise to the occasion and acquit themselves creditably. They should be given a fair trial, before such mills are taken over officially, Nobody can accuse the official or semi-official industrial administration of efficiency or economy, Our public sector undertakings are not particularly known for either business acumen or insight in industrial psychology. Generally, neither emyloyees nor consumers are satisfied with the manage-

ment of public iundertakings. Against the background of this experience, we will have to think hundred times before suggesting official take over. I am not progressive enough to condemn the Government for mismanagement of its industries and to demand, in the same breath, governmentalisation of the rest of the industries. I think that Government should govern, its proper function is nothing less but nothing else.

The industry has to approach the Government for another purpose also, that is, the liberalisation, modification, or reorientation of its policies, both monetary and non-monetary. As stated earlier, most of the demands of the employers relate to the general economic policics of the Government, and it would be wrong to persume that the entire economic field of the country is only a stage set for a dialogue between the cotton textile employers and the Government. Within the framework of broad national interests, the textile workers will not hesitate to support the employers' demand for greater aid and concessions; they would however, like to ensure that the consequent gains are duly shared by the workers and the consumers. The crux of the problem is whether the Government of India accepts the plea of the mills to be treated as a priority, a first priority, industry. Aftergoing through the latest budget of Shri Morarjibhai it would be difficult for the employers to assert that the Government is completely indifferent to this industry. Since it will take some time to work out full implications of different proposals therein, I am not in a position to agree or disagree with the comment of an eminent textile employer that the budget is the very 'sanjivani' for textile industry. I, however agree with the statement that "while the inclusion of the cotton mill industry as a priority industry for purposes of deve-

lopments rebate is welcome, it is not clear if it is also going to be treated as a priority industry for purposes of concessions in corporate tax." Be it as it may, one thing is certain, neither the employers nor the Government can be considered as a competent authority to finally decide the question of priorities. That authority should vest in an independant impartial, unattached body having a full and integrated view of the entire canvas of national economy. In absence of any other body fulfilling this role: the Planning Commission seems to be the only alternative in this respect. more so after the inclusion of Shri D. R. Gadgil in it. I should like to be assured that the suggestions of Shri Gadgil shall not be turned down or treated lightly by the powers-that-be. Textile emplyoers also should accept the validity of the proposals of Planning Commission in general and Shri Gadgil in particular. The question of 'monetary aid' cannot be decided through "collective bargaining" between the Industry and the Government.

The employers have sought monetary aid in various form.s That any such aid, if properly utilised, can help in revitalising the industry is quite obvious. But the matter does not end there. That is a mere patch-work. No industry can succeed or thrive without willing cooperation of its employees and satisfaction of consumers. For this purpose, it is necessary to convince them that the plan or programme for the industry is a part of an integrated thought process for the long ranged progress and prosperity of the entire nation.

In fact, no abiding solution of the problem is conceivable, if we take the existing order of things for granted. For example, we have before us a three-pronged approach proposed by the Study Group of National Labour Com-

mission and the four ways suggested by the Manubhai Shah Committee to revive, modernise, and rehabilitate weak textile units in Gujerat. No doubt, these constitute the best possible measures under the conditions obtaining today. But. I am sure, that both these bodies must not have failed to realise the fact that implementation of their remedial measures. particulary those involving any re-deployment, was beset with practical and psychological as well as legal difficulties.-some of them surmountable, others insurmountable. This, again. would be a temporary patch-work. I feel that a revolutionary change in the basic approach to the problem is called for.

With due respect to all concerned, I venture to say that the thinking on cotton textiles' problem has so far been sectional,sectoral or lopsided. Till recently,the cotton textile mills were not taking any keen interest in the problems of cotton-growing. We have not yet properly and clearly defined or demarcated the respective roles or spheres of charkha, handloom, powerloom, textile mills and rayon and synthetic fibre industry, in the comprehensive and national planning on Textiles. The hosiery is being treated as a separate subject. The probable impact of viscose staple fibre or polyester fibre on the future growth of cotton textiles has not been precisely ascertained. The distinct jurisdictions of the private, the public and the cooperative sectors within this industry have not so for been finalised. Is it advisable to entrust manufacture of goods for export to certain industries and of those for domestic consumption to the rest? We do not know our own mind. In absence of an integrated view, the problems of cotton cultivation, ginning and pressing, khadi, handloom, powerloom, hosiery, mills, man-made-fiber, manufacture of textile machinery, stores, and spare parts, dyes, chemicals

textile accessories and auxiliaries, and the trade of cotton, cloth, yarn and other items mentioned above, are being considered today in isolation, each one pulling in its own direction. There is compartmentalisation in the thought process. This is hardly conductive to the proper solution of any problem or the evoluation of a balanced, integrated national textile policy, This compartmentalisation must be put an end to. All the various interests involved in the industries enumerated above must be made to realise that all of them put together constitute the Textiles Commonwealth, or the Textile Coparcenery, or the Textiles Industrial Family of India. Though on sectional and short-ranged consideration it may sometimes appear that the immediate interests of these different industries are mutually exclusive, and, at times, even conflicting, in the long term interest of all of them as well as of the nation it is imperative to recognise that all of them have common interest and, therefore, acommon direction and destination. All of them have to sink or swim together.

( Needless to add that this spirit of integrated thinking must be inculcated in the various constituents or copartners of every one of these industries, i. e. share-holders, managers, technicians and employees. All these three should be made to realise the identity of their interests. This implies all pervading spirit of patriotism and recasting of the pattern of industrial administration and ownership.)

Once such an Industrial Commonwealth, or Coparcenery, or Family comes in to being, subjectively in the consciousness of the constituents and objectively in the form of suitalbe organisation, the entire capital, managerial and technical skill, and human labour belonging to all the constituent industries should form the common pool to be at the dis-

posal of the Collective Executive of the Coparcenery, for the purpose of deployment. This alone would facilitate evolution and inplementation of rational and integrated National Textiles Policy.

The strength of this Coparcenery would be about 20 million activists having as there dependants at least 35 million persons. Under the present set-up, no single industry is in a position to readjust or reorganise itself without affecting adversely the interests of any one or more of its three copartners, i . e . capital, labour and managerial/techinical cadre. So far as workers are concerned, it is obvious that the proposed Coparcenery would be much more competent to redeploy them in pursuance of any broader policy, without throwing them to the wolves. The same holds good regarding re-deyploment of capital and managerial/techinical skills, under similar circumstances.

I exhort all concerned parties and interests to seriously consider this view point. On behalf of Cotton textile workers, I assure that their sincere and willing cooperation will always be readily available for the implementation of any scheme or programme which is calculated to protect and promote the intrests of their industry and the Nation, there motto being–

' पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वत: ' (ऋ )

' Let man protect man from all sides'

JAI BHARAT

□□□□□□

## –भारतीय मजदूर संघ की पुस्तके–

हिंदी

१) युनियन पथ प्रदर्शक
२) भारतीय मजदूर संघ ही क्यों ? . . . . . . १.५०
३) श्रमिक गीत . . . . . . १.००
४) समाजवाद क्यों नही ? . . . . . १.००
५) राष्ट्रीयकरण–एक आलोचनात्मक अध्ययन . . . ०.५०
६) हमारा प्रतीक . . . . ०.५०
७) हमारा राष्ट्रीय श्रम दिवस . . . . ०.३०
८) हमारी विशेषतायें (केवल सदस्योंके लिये) . . . ०.२५
९) औद्योगिक महासंघ ( . . . . १.००
१०) अ. भा. मजदूर संघ प्रथम अधिवेशन ,, ,, ,,) १.००
११) असली वेतन . . . . . . १.००

मराठी– . . . . . . . . . ०.१०

१) वक्तृत्वाची पूर्वतयारी
२) भारतीय मजदूर संघ–परिचय . . . . . . १.५०
३) वेतन लढा . . . . . . . १.००
४) कामगार संघटणा . . . . . . . ०.५०
५) असली वेतन . . . . . . ०.२५

English— . . . . . . . . ०.१५

1) Why B. M. S. ?
2) Your Office. . . . . . . . 1.00
3) Your Equipment. . . . . . . 0.20
4) Labour Policy. . . . . . . 0.20
5) Labour Policy (cloth bound) . . . 10.00
. . . 15.00

मिलने का पता–
भारतीय मजदूर संघ
हरकरे भवन बडकस चौक
महाल– नागपुर–२.